उत्तम गुरु–भक्ति
के आदर्श

उत्तम गुरु-भक्ति के आदर्श

श्री स्वामी चिदानन्द

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगरह्नह्न२४९१९२

जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम संस्करण : २०१५

(२,००० प्रतियाँ)

द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

Swami Chidananda Birth Centenary Series—66

निःशुल्क वितरणार्थ

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगरह्वह्व२४९१९२,
जिला टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit : dlsbooks.org

प्रकाशकीय

परम आराधनीय श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज की जन्मशती के पुनीत अवसर की निर्दिष्ट शुभतिथि २४ सितम्बर २०१६ है। इस मंगलमय महोत्सव को मनाने हेतु मुख्यालय शिवानन्द आश्रम की सुनिश्चित योजना-अनुसार परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज के प्रबोधक प्रवचनों से समाविष्ट एक सौ पुस्तिकाओं का प्रकाशन निःशुल्क वितरणार्थ किया जा रहा है।

विश्ववंद्य सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के दिव्य जीवन-सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसारार्थ परम पूजनीय श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज व्यापक रूप से देश-विदेश में आध्यात्मिक यात्रा करते हुए असंख्य जिज्ञासुओं, भगवद्भक्तों को अपने स्वतःस्फुरित सहज, अतीव गहन प्रेरक प्रवचनों द्वारा दिव्य जीवन का पथ निर्देशित करते रहे। सद्गुरुदेव की दिव्यानुभूति के अनुसार स्वामी चिदानन्द जी के प्रवचन एक सन्त-हृदय के सहजानुभूत अन्तर्ज्ञानयुक्त प्रकटित भावोद्गार हैं।

अब तक के कुछ अप्रकाशित व्याख्यानों को पुस्तिका रूप में प्रकाशित कर श्री स्वामी जी महाराज को जन्म शताब्दी के महान् शुभावसर पर उनके पावन श्रीचरणों में सादर सप्रीत भेंट समर्पित करते हुए हम हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तिका **'उत्तम गुरु-भक्ति के आदर्श'** में चार प्रवचनों का संकलन है।

श्रीमती प्रेम शौनक एवम् मुख्यालय शिवानन्द आश्रम के अंतेवासियों द्वारा इन प्रवचनों के अभिलेखन, संपादन तथा संकलन कार्यों में प्रेम पूर्ण सेवा–सहयोग के लिये हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

परम पिता परमात्मा, हमारे आराध्य श्री सद्गुरु भगवान् श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज और परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज के अनन्त शुभाशीर्वाद सब पर रहें!

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

विषय–सूची

१. उत्तम गुरु–भक्ति के आदर्श ९

२. गुरु–उपदेश–पालन का दैनिक अभ्यास. २३

३. मानव जीवन के तीन हेतु ३७

४. जन्म दिवस का विशेष सन्देश ५१

१. उत्तम गुरु-भक्ति के आदर्श

प्रिय आत्मस्वरूप!

परम पिता परमात्मा की दिव्य अमर सन्तान!

हमारी पुण्यभूमि, मातृभूमि भारतवर्ष की संस्कृति के आध्यात्मिक जीवन की प्राचीन पद्धति में एक विशिष्टता है, वह है हमारी गुरु-शिष्य परम्परा तथा गुरु शिष्यों के बीच में एक विशेष सम्बन्ध। जो अन्य देश विदेश के इतर जनसमुदाय के जीवन में, इतर संस्कृति में नहीं पा सकते। वैसे तो वहाँ भी जिज्ञासु हैं, साधक वृन्द, भगवद्भक्त तो हैं और उनका मार्गदर्शन करने के लिए सन्त, महनीय लोग, महापुरुष कई हुए हैं। ब्रह्मविद्या की शिक्षा गुरु से प्राप्त करके, अपने जीवन में उसका अनुभव करके, उसको और अधिक सबल बना करके भविष्य की पीढ़ी के लिए जो आध्यात्मिक अनुभूति को, ज्ञान के ऐश्वर्य को सक्रिय, सजग और परिपूर्ण रूप में रखते हुए कई शताब्दियों से, हजारों वर्षों से आये हुए उसको सफल रूप में रखते हुए अब भी उज्ज्वल रखने की गुरु-शिष्य सम्बन्ध की पद्धति है, यह भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

उज्ज्वल पूर्वजों से प्राप्त एक अमूल्य तत्त्व हमारे जीवन में है। गुरु-शिष्य का एक अनोखा सम्बन्ध है। अनोखा क्या? अन्य जितने भी सम्बन्ध हैं मानव व्यक्ति के समाज में, सब प्रापंचिक हैं, प्रपंच के हैं। मित्र का, यार-दोस्तों का, रिश्तेदारों का, निकट परिवार का सब सम्बन्ध प्रापंचिक हैं। लेकिन जिसको गुरु मानते हैं, उनके साथ शिष्य का सम्बन्ध केवल परमार्थ का है, प्रपंच का नहीं। वह प्रपंच के लिए गुरु नहीं बनाते।

संसार से सन्तप्त एक व्यक्ति ऐसे महान् सन्त के पास किस भाव से, किस वास्ते पहुँचता है, क्या ले कर पहुँचता है? पहुँचा हुआ सन्त किस प्रकार का होता है? ये सब बहुत सुन्दर स्पष्ट रूप से आदि शंकराचार्य-कृत 'विवेक चूड़ामणि' के प्रारम्भिक श्लोकों में अभिव्यक्त किया गया है। ये सन्त जन अहेतुकी परोपकार करने के लिए ही रहते हैं, और कोई भी उनका जीवन-उद्देश्य नहीं है। अन्य किसी कारण से वे धरती पर नहीं रहते।

जैसा कि शिशिर ऋतु के शीतकालीन मौसम में, पृथ्वी पर सब ठण्ढा हो जाता है, जम जाता है। फूल बगैरह कुछ खिलता नहीं। ऐसे मौसम में जहाँ उपज बहुत कम है। दक्षिण जैसे नीचे भाग में तो नहीं पर ऊपरी भाग में उत्तर के देश में, और ऊपर जाने पर सब सुनसान हो जाता है, सब बर्फ से ढक जाता है। कोई व्यक्ति या जानवर भी नहीं दिखायी देते। कोई वृक्ष-वनस्पति भी नहीं दिखाई देते। और जब बर्फ पिघल जाती है, वसन्त ऋतु आती है, दशों दिशाओं में सब ओर नये जीवन की उत्पत्ति, पुनः विकास हो जाता है। सब खिलते हैं। सब खेलते हैं। प्राणी-पक्षी इत्यादि संचार करने लग जाते हैं। नया जीवन बन जाता है, यह वसन्त ऋतु की देन है। जगत् में, पृथ्वी में एक नया जीवन प्रदान करके वसन्त ऋतु को क्या मिलता है? उसको कोई तनख्वाह नहीं मिलती, कोई सार्टिफिकेट नहीं मिलता। उसे अपने वास्ते कोई लाभ नहीं।

ऐसे ही आदि शंकराचार्य ने अपने सुमधुर काव्य 'विवेक चूड़ामणि' के श्लोकों में कहा हैह्वह्वये महापुरुष तो वसन्त ऋतु जैसे सब लोगों को लाभान्वित करने के लिए इस धरती पर हैं।

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो
वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।

तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जना-

नहेतुनान्यानपि तारयन्तः।। (विवेक चूडामणिह्वह्व३९)

जो आप स्वयं भवार्णव को पार करके, अन्यों को पार करने के लिए ही होते हैं। आपने तो भवसागर पार कर लिया और दूसरों को पार कराने में लगे हुए हैं। ऐसे सन्तों के निकट प्रपंच से पीड़ित एक बद्धजीव, एक जिज्ञासु किस भाव से जाता है, किस उद्देश्य से जाता है, और उनके चरणों में शिष्यत्व को स्वीकार करता है, यह बहुत सुन्दर शब्दों में आदि शंकराचार्य ने बता दिया।

साथ ही कई उपनिषदों में वर्णित हैह्वह्वशिष्य किस प्रकार से गुरु के पास जा कर परमार्थ के लिए ही केवल याचना करता है, 'हमें वह ज्ञान दें जिससे हम तापत्रय से भरे इस संसार के बन्धन से मुक्त हो जायें। मोक्ष की कामना रख कर ही आया हूँ। प्रपंच का कुछ नहीं चाहिए। हमें केवल मात्र कैसे भी प्रपंच से छुटकारा चाहिए, इस बन्धन से हमें मुक्ति चाहिए। इस यातना से हमेशा के लिए हमें मुक्ति चाहिए।' एकमात्र यही आकांक्षा रख के साधक का महापुरुषों के पास जाना, सम्बन्ध बनाना, यह शिष्यत्व का आदर्श है; भारतीय संस्कृति में यह शिष्यत्व की कल्पना है। गुरु के पास शिष्य प्रपंच-पदार्थ के लिए नहीं, किसी कामकाज के लिए नहीं, किसी उद्देश्य से नहीं, किसी मनोकामना से नहीं, केवल मात्र भगवद्साक्षात्कार के लिए जाता है। क्योंकि बिना भगवद्साक्षात्कार के यह जन्म-मृत्यु का जो चक्र है, उससे मुक्त नहीं हुआ जा सकता। श्री कृष्ण परमात्मा ने अपने गीता-ज्ञानोपदेश में कहा है : '**जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।।** (१३/८)'

आदि शंकराचार्य जी ने दोषों से अंकित मानव जन्म का जो चक्र है, उसे इस प्रकार बताया हैह्न

पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी जठरे शयनम्।
इह संसारे बहु विस्तारे,
कृपया पारे पाहि मुरारे।। (भजगोविन्दम्ह्नश्लोक सं. ८)

इस संसार में बार-बार नहीं आना, ऐसी जिनके अन्दर जागृति आ गयी है, जिनके अन्दर एक समझ आ गयी है, कि मैं बद्ध जीव हूँ, यह बड़ा बन्धन है जिससे मैं मुक्त होना चाहता हूँ। उसकी आन्तरिक चेतना में ऐसी एक सजगता आ गयी है, वही शिष्य बन सकता है। वही शिष्य बनने के लिए तैयार है, शिष्यत्व का यही सारभूत तत्त्व है, अपने आध्यात्मिक निज स्वरूप को जान लेना, 'शरीर-मन-बुद्धि उपाधियों में मैं नहीं हूँ। मैं एक आत्मतत्त्व हूँ। नित्यशुद्ध-नित्यबुद्ध, नित्यमुक्त, परिपूर्ण आत्मतत्त्व हूँ; अज्ञान के कारण मेरा निजस्वरूप का ज्ञान नष्ट हो गया है, मैं इतनी यातना भोग रहा हूँ। राग-द्वेष में फँसा हूँ, काम-क्रोध आदि से मैं पीड़ित हूँ। यह षड्रिपु मुझे त्रास दे रहे हैं, यह बड़ी अपूर्ण अवस्था है, इसको आगे ज्यादा बढ़ाना नहीं, इसे समाप्त करना चाहिए, इसी में सुख-शान्ति की सम्भावना है।'

भारतवर्ष के सत्य सनानत धर्म में, भारतवर्ष की संस्कृति में, भारतवर्ष के आध्यात्मिक क्षेत्र की जीवन प्रणाली में गुरु को मानव नहीं समझा जाता, उनको भगवान् समझते हैं। गुरु मनुष्य है, ज्ञानी है, महात्मा है, सिद्ध पुरुष है, इनके पास जा कर ज्ञान सीखें ऐसा नहीं। वह भगवान् ही मानते हैं। इन्होंने

भगवान् का साक्षात्कार कर लिया है; भगवान् और इनमें कोई अन्तर नहीं।

आध्यात्मिक क्षेत्र के जीवन की दृष्टि में एक सूत्र हैह्नह्न''**ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।**''

जिसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया वह ब्रह्म से अलग नहीं। '**ब्रह्मवत् भवति**' नहीं कहाह्नह्न'**ब्रह्मैव भवति।**' इसलिए वह साक्षात् परब्रह्मस्वरूप हैं, यह अनुभव सिद्ध बात को हमें बताया। शिष्य का गुरु के प्रति भाव, दृष्टिकोण यहीह्नह्नहोना चाहियेह्नह्नगुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महेश्वर हैं, गुरु ही शक्ति स्वरूप हैं, गुरु ही साक्षात् परब्रह्म स्वरूप हैं। गुरु भगवान् हैं। भगवान् ही हैं, और कोई नहीं हैं। मनुष्य समझ कर नहीं, बल्कि वह दिव्य हैं। गुरु के रूप में प्रकट स्वरूप भगवान् के पास मैं जा रहा हूँ। मानव समझ कर हम जायेंगे तो वह मानव जैसा देंगे, भगवान् समझ कर जायेंगे तो उनसे हमको वह प्राप्त हो सकता है जो मानव नहीं दे सकता। भगवान् मुक्ति दे सकते हैं, मानव मुक्ति कैसे देंगे? गुरु को भगवान् समझ कर जाने में ही वह मुक्ति प्रदान करते हैं।

गुरु हमारे मन मन्दिर में, गुरु हमारे प्राण।
सारे विश्व का वह है दाता नारायण भगवान्।।
मुक्ति दाता, भक्ति दाता नारायण भगवान् ।।

गुरु के पास शिष्य जाते हैं। एक शिष्य को गैया चराने में लगा दिया सालों तक। और एक शिष्य को बोलेह्नह्न''हमारी खेती है, उसकी देखभाल करो। सिंचाई करो, पानी डालो।'' एक और शिष्य गया। उसको कहाह्नह्न''हम हर रोज हवन करते हैं, अग्नि-कार्य करना होता है (उस समय अखण्ड अग्नि जलता था, बुझाने नहीं देते थे। गुरु लोग, महर्षि ज्ञानी सब

गृहस्थ थे) तुम्हारा कर्तव्य-कार्य लकड़ी लाना है।'' एक और शिष्य को बोलेह्नह्न''गैया चराना।'' यह नहीं कहा कि दोपहर को आ कर भोजन करना, खाने के लिए नहीं कहा। इसलिए कुछ खाया नहीं, भूखा मरने लगा। फिर उसकी विचित्र कहानी है। आखिर में भूख सहन न कर पाने पर, गैया दोहन करते समय जो फेन आता है, झाग आता, उसको थोड़ा-थोड़ा मुँह में लगाया। वापिस आया तो वह थोड़ा सा झाग उसके मुँह में लगा रहा। देख कर गुरु ने कहाह्नह्न''अरे! तुमने क्या खाया?'' नाराज हुए तुमने कुछ खाया है। ऐसी परीक्षा ली।

जिसको लकड़ी लाने के लिए कहा, वह कई महीने बीत गये, कई साल बीत गये, दसों साल बीत गये, बीसों साल बीत गये। यह शिष्य लकड़ी लाता रहा। गुरु ने ब्रह्मज्ञान की कभी बात नहीं की। शिष्य की हिम्मत नहीं रही बात करने की। गुरु के पास आ गये हैं तो गुरु पर पूर्ण विश्वास और गुरु के आज्ञा पालन में शत-प्रतिशत आज्ञाकारी बनने का भाव रहा। एक दिन जब शिष्य को लकड़ी का बोझा ज्यादा मालूम हुआ, बड़ी मुश्किल से ले कर आया। सिर से लकड़ियों का गट्ठर उतारने लगा। उसमें काँटे, कील कुछ लगा होगा, बाल खिंच कर लकड़ी में फँस गया था। लकड़ी जब जमीन पर गिरा तो शिष्य की नजर गयी तो अपने बाल को देखा कि सफेद हो गया है, बिलकुल सफेद। नौजवान आया था अब वृद्ध हो गया; दंग रह गया वह जैसे कि बिजली लग गया हो। 'यह क्या! मैं इतना वृद्ध हो गया?' जब उसने पानी में जा कर देखा तो बोलाह्नह्न''दाढ़ी भी सफेद हो गयी, सिर के बाल सफेद हो गये, मुँह भी वृद्ध हो गया। जब से आया हूँ, पता नहीं कितने साल से यह लकड़ी लाने की सेवा कर रहा हूँ।'' उसको बहुत दुःख हुआ। दुःख सहन नहीं कर पाया। ''मैं तो ब्रह्मज्ञान के लिए आया था, अब

बूढ़ा हो गया।'' एकदम ऊँची आवाज में रोने लगा। रोने का शब्द सुन कर कुटिया से गुरु-पत्नी आयी, गुरु आये। पूछाह्वह्व''क्यों, रोता है?'' वह रोते-रोते बोलाह्वह्व''मैं ब्रह्मज्ञान वास्ते आया था, मुझे अभी तक ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। मैं वृद्ध हो गया हूँ।'' गुरु एकदम उसकी आँखों में देख कर बोलेह्वह्व''क्या तुमको ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ?'' तुरन्त-तत्क्षण शिष्य को ज्ञान आ गया। गुरु ने देखा उसका शिष्यत्व कितनी मात्रा में है? देखा, तो अनुभव किया कि इतना परिपूर्ण समर्पण, पूर्ण आज्ञापालन। कभी एक सवाल तक नहीं पूछा और जन्म-भर सेवा की। इसके लिए ब्रह्मज्ञान नहीं तो और किसके लिए ब्रह्मज्ञान है? उत्तम अधिकारी है, योग्य है, देखकर गुरु बहुत सन्तुष्ट हुए। अपना जो-कुछ था पूरा का पूरा गुरु ने सब दे दिया। मराठी में एक कहावत हैह्वह्व

''**आपणा सारिखे करिते ते सन्तः।**'' भगवान् आप ही तत्क्षण सब कर सकते हैं, उनको करने में कोई देर नहीं लगती। गुरु महाराज कहते थेह्वह्व ''आज्ञाकारिता आदर भाव से बढ़कर है।'' गुरु महाराज ने यह भी कहाह्वह्व ''जिस चीज को चाहते हो उसके लिए पहले योग्य बनो, उसके बाद उसके लिए इच्छा करो।'' पहले इच्छा करना और योग्य नहीं बनना, तब, इच्छा पूरी नहीं हो सकती। उपनिषदों में और कई ऐसे उदाहरण हैंह्वह्वआरुणि, सत्यकाम जाबाल, इत्यादि। इस प्रकार के प्रसंग हम अपने वेदों में, अन्य कई धर्मग्रन्थों में भी प्राप्त करते हैं। सबसे ऊपर साक्षात् प्रकट स्वरूप परमात्मा को समझो। उपनिषद् में एक वाक्य है :

'**यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।**' जिनकी भगवान् में परम भक्ति है, उतनी ही मात्रा में गुरु में भी होनी चाहिये। उसका ज्ञान अपने आप उसे आ जाता है, इस प्रकार की उत्कृष्ट गुरु भक्ति से। '**यस्य देवे**

पराभक्तिः' जिनकी भगवान् में परम भक्ति है, **'यथा देवे तथा गुरौ'** जैसी भगवान् में परम भक्ति है वैसी गुरु में भी परम भक्ति है। **'तस्यैते कथिता ह्यर्थाः'** ऐसे व्यक्ति के लिए श्रुति-स्मृति में कहा हुआ जो ज्ञान है, उन शब्दों का अर्थ है **'प्रकाशन्ते महात्मनः'** यह महान् आत्मा ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। श्रुति-स्मृति के मर्म को जान लेता है। उपनिषद् का ज्ञान उनके हृदय में विकसित हो जाता है, जागृत हो जाता है। जो नित्य तत्त्व है, उस (नित्य) तत्त्व की प्राप्ति के लिए ही, उस उद्देश्य को ले कर ही वह एक सन्त के पास, गुरु की दृष्टि से, गुरु की भावना ले कर जाता है। अन्य कोई चीज वह गुरु से माँगता नहीं, अपेक्षा नहीं करता है, चाहता नहीं है, ऐसी दृष्टि रखता ही नहीं। वह जानता हैह्वह्वहमारे प्रारब्ध-कर्म के अनुसार जो हमें आना है, वह आ ही जाता है, अपने-आप आ जाता है।

अर्थमनर्थं भावे नित्यं, नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धन भाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता रीतिः।।

(मोहमुद्गरह्वह्व२९)

तुम्हारे पूर्व जन्मकृत, शुभाशुभ कर्मानुसार जो-जो तुम्हें प्राप्त होना है, जन्म से पहले ही विधाता ने निर्णय कर लिया। तुम निश्चिन्त रहो, उसके लिए तुम्हें व्याकुल होने की जरूरत नहीं है। काहे के लिए किसी के आगे हाथ पसारना। जो हमें आना है, वह आना है, कोई भी उसे रोक नहीं सकता है, जो तुम्हें प्राप्त होना है। कहा जाता है न, जो तुम्हारे भाग्य में है, तुम जंगल में बैठे हो तो भी ऊपर आकाश से प्राप्त होगा। भगवान् भी तुम्हारे कर्मानुसार छत को फाड़ कर वर्षा करेगा। इसके माने दृढ़ विश्वास। जिनसे वह परम वस्तु प्राप्त होती है उनके लिए शिष्य भला क्या नहीं कर सकता? सब-कुछ कर सकता है। भगवान् के लिए भला आप क्या नहीं कर सकते!

सब-कुछ कर सकते हैं। इसीलिए गुरु-सेवा माने तन-मन-धन अपना सर्वस्व गुरु के चरणों में रख कर, 'मैं भी आपका हूँ' ऐसा करके, ऐसा कह के भाव से सेवा करना। जैसे पत्नी पति के लिए सब-कुछ समर्पण करके सेवा करती है, माँ एक बेटे के लिए सब-कुछ समर्पण करके सेवा करती है। सच्ची प्रजा अपने राजा के लिए प्राण देने के लिए तैयार रहती है तो देश की रक्षा के लिए, राजा की सेवा के लिए, प्राण को भी कुछ नहीं समझती। ऐसा ही शिष्य गुरु के वास्ते सब-कुछ करने के लिए तैयार है। उनके लिए गुरु की इच्छा पूरी करना, वही सेवा है। गुरु के आदर्श को अपने जीवन में बनाये रखना, वही परम सेवा है।

गुरु के हितकारी जो हो, सब-कुछ करना वही सेवा है। गुरु की कोई संस्था है तो उसका रक्षण करना, उसकी भलाई के लिए कार्य करना वह भी सेवा है। जैसे पुत्र सब प्रकार से पिता की सेवा करता है, पिता की सम्पत्ति का रक्षण करता है, शराब पी करके, जुआ खेल करके बरबादी नहीं करता, बल्कि अधिक बढ़ाने के लिए सुरक्षित रखता है। अपने जीवन के द्वारा पिता के नाम और यश में कोई कलंक नहीं ले आने देता है, वही सुपुत्र है। कुपुत्र क्या करता है? उसका उल्टा करता है। जैसे पिता के लिए सुपुत्र की सेवा होती है, वैसे ही गुरु के प्रति सच्चे शिष्य की सर्व प्रकारेण सेवा, परिपूर्ण रूप में अर्पित भाव के साथ होती है। किसी चीज की अपेक्षा नहीं करते हुए कि हमने सेवा की तो गुरु हमको शाबाश बोलना चाहिए, प्रशंसा करना चाहिए, अच्छा टाइटल देना चाहिए, नहीं, सच्चे शिष्य का भाव यह नहीं होता है। सेवा करने का मौका मिला, हमे उन्हें धन्यवाद करना चाहिएह्वह्वहे प्रभो! हमें चेला होने का सौभाग्य दिया। ऐसा करके हमारे हृदय में, शिष्य के हृदय में कृतज्ञता, शुकर, धन्यवाद, आभार का भाव होना चाहिए।

यह हमें गुरु महाराज श्री स्वामी शिवानन्द जी द्वारा बतायी हुई बातें हैं। इस प्रकार की होती है शिष्य की गुरु के प्रति भक्ति, शिष्य की गुरु के प्रति सेवा। और सेवा करने में भावुकता को महत्त्व नहीं देना चाहिए। मैं छोटा-सा एक प्रसंग बताता हूँ ह्वह्व८ सितम्बर को गुरु महाराज की हीरक जयन्ती आयी। उस समय गुरु महाराज का साहित्य कलकत्ता में छपता था, कुछ लाहौर में छपता था; किन्तु कलकत्ता में ज्यादा छपता था। रामनिवास जी के पिता काशीराम गुप्ता जी की प्रेस थी। वह गुरु महाराज के परम भक्त थे। पहले पहल १९३९-४० में गुरु महाराज के १० ग्रामोफोन रिकार्ड बने जहाँ आजकल कलकत्ते का हवाई जहाज का अड्डा हैह्वह्वदमदम में एक ग्रामोफोन कंपनी थी, वहाँ बने। उसके वास्ते कलकत्ते में जा कर गुरु महाराज ने दो महीने डेरा लगाया तो, उस समय काशीराम गुप्ता जी ने बहुत मदद की थी। उनके प्रेस में बहुत-सी किताबें छपती थीं, और ये किताबें सब आध्यात्मिक थीं। वर्तमान पत्रिका या बिजनैस का कुछ चीज छापने का नहीं था। वहाँ के प्रूफ रीडर गुरु महाराज की किताबों की प्रूफ रीडिंग नहीं कर पाते थे। उनके लिए कोई न कोई आदमी ऋषिकेश से जा कर प्रेस में रहा करता था।

एक स्वामी जी वहाँ हमेशा रहा करते थे, गुरु महाराज के परम भक्त, छोटी उम्र के, उत्तम साधक, अभी उनकी पुण्य स्मृति में मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। वह एक वक्त कुछ किताबें ले कर गये हुए थे, उसमें से जो किताबें छपी हुई थीं ऋषिकेश आश्रम में ले कर आये, कुछ किताबें अभी छपनी थीं। दो हफ्ता, पन्द्रह-बीस दिन रहे। अगस्त में आये थे, सितम्बर निकट ही था। गुरु महाराज बोलेह्वह्व''बाकी जो किताब छप रहा है, ठीक अभी जा सकते हो, कलकत्ता जाओ।'' वह बोले, ''स्वामी जी!'' गुरुदेव ने पूछा,

''क्यों क्या बात है?'' वह बोलेह्वह्व''मैं आपकी स्वर्ण जयन्ती के बाद जाऊँगा!'' ''ऐ! हीरक जयन्ती क्या है? कुछ नहीं है, किस लिए? यहाँ-वहाँ सब एक ही है। चलो।'' उनके ऊपर गुरु महाराज बहुत प्रेम रखते थे। हमको बोलते थेह्वह्व''यह आदर्श शिष्य है, आदर्श साधक है। आपको इनसे कुछ सीखना पड़ेगा। इतना संयमी, इतना सादा।'' वह किसी को भी कभी अपनी फोटो नहीं लेने देते थे। ग्रुप फोटो में बुलाया तो नहीं आते थे। किसी फोटोग्राफर ने विवश किया तो गुरु महाराज कहते थेह्वह्व''नहीं, परेशान नहीं करो। उनका यही सिद्धान्त है। उन्हें ये सब पसन्द नहीं।'' इतना मानते थे गुरु महाराज उनको। बहुत आदि में गुरु महाराज की पांडुलिपि वह टाइप करते थे। लेकिन इतना प्रिय शिष्य होते हुए भी, साधना के विषय में गुरु महाराज का इतना ऊँचा विचार, इतना प्रशंसनीय भाव होते हुए भी, ''जब ड्यूटी है, मेरा काम है, क्या यहाँ रहने में ही भक्ति होती है? चलो!'' गुरुदेव ने कहा। उसी रात की गाड़ी से उनको भेज दिया। मैं बिलकुल दंग रह गया। गुरुदेव का नया रूप देखा। वह तो इतने दयालु, इतने प्रेमिल स्वभाव वाले, लेकिन ड्यूटी की बात आयी तो उनकी बात काट कर आपने कहा, '' तत्क्षण चलो, कोई बात नहीं।'' यह नारायण स्वामी जी थे, रामायणी स्वामी जी।

जैसे स्वामी जी ने कहा, बस उसी समय तुरन्त सब छोड़ दिया, ''ठीक है, स्वामी जी!'' ऐसा कहा और अपना एक बिस्तरा लिया और चले गये। स्वामी जी से नाखुश नहीं हुए, दुखित नहीं हुए, व्याकुल नहीं हुए। गुरु ने कह दिया तो ठीक है। हमारा कर्तव्य यही है, इसी में हमारा कल्याण है। ऐसे बड़े सन्तुलनात्मक भाव से, जरा भी अप्रसन्न नहीं होते हुए, जरा भी निराशा या दुःख को प्रकट नहीं करते हुए, बिलकुल प्रशान्त हो कर

चले गये। तभी तो ऐसे व्यक्ति को उत्तम साधक बोलते हैं। यह शिष्यत्व का आदर्श है।

गुरु-भक्ति का आदर्श हमारी संस्कृति में कैसा है, उपनिषद्-श्रुतिवाक्य के द्वारा बता दिया आपको। उपनिषदों में कई प्रकार के आदर्श-दृष्टान्त हमने शिष्य और गुरु के सम्बन्ध के बारे में प्राप्त किये हैं। ये सब आपको पढ़ने चाहिए। गुरु-भक्ति क्या होती है और गुरु की आज्ञा-पालन क्या होता है, हमें ज्ञात होता है। शिष्य में शिष्यत्व का क्या स्वरूप हैह्वह्वयह गुरु गोरखनाथ का एक प्रसंग है। वह एक शिष्य को टैस्ट करना चाहते थेह्वह्वउसमें बहुत भक्ति थी, उसके प्रति बहुत ज्यादा विशेष वात्सल्य रखते थे। अन्य शिष्यों को मात्सर्य हुआ। गुरु इसके ऊपर क्यों विशेष वात्सल्य रखता है।

एक दिन ऐसे विचरण करते वक्त सबको ले गये। मध्याह्व का टाइम था। प्यास लगी। वैसे तो लीला है गुरु की। एक पेड़ था नारियल का। उन्होंने उस शिष्य को बुलायाह्वह्व''जा कर तुम नारियल तोड़ो।'' वह तुरन्त वृक्ष पर चढ़ा। नारियल को तोड़ा, पूछाह्वह्व''कितने तोडूँ?'' ''तीन-चार तोड़ो। काफी हैं। मुझे बहुत प्यास लग रही है।'' अपने त्रिशूल को रख कर बोलेह्वह्व''इस पर तुरन्त कूदो। नारियल को हाथ में रख कर तुरन्त कूदो।'' उसने एक क्षण भी विचार नहीं किया। हाथ में नारियल रख कर एकदम कूदा। मृत्यु तो शत-प्रतिशत थी। लेकिन दिखाना था सबको। जैसा कि पूरा एकदम गिरा, त्रिशूल से दस फुट के अन्तर पर, ऐसे आहिस्ते-आहिस्ते जैसे हलका फूल आता है वह पेड़ से ऐसे गिरा। उसके बाद अन्य शिष्यों ने इस

बात को विचार में भी नहीं उठाया। अपने मन में समझ लिया; क्योंकि उनमें तो यह सब करने की हिम्मत नहीं थी।

शिष्यत्व क्या होता है? गुरु महाराज ने सन्त-चरित्र पुस्तक में ऐसे कई प्रसंग दिये हैं। शिवाजी महाराज के सद्गुरु समर्थ रामदास जी के पास भी एक शिष्य था। गँवार था, अनपढ़ था, भोला था। गुरु का पर्सनल काम, रसोई करना, खिलाना-पिलाना सब वही करता था। रामदास महाराज वृद्ध होने के बाद पान खाते थे। वह एक बार बोलेह्वह्व''मुझे पान-सुपारी खानी है, लेकिन मेरे लिए कूट कर ले आओ। दाँत नहीं हैं। कड़ा नहीं खा सकता।'' वह तुरन्त गया और पाँच मिनट में मुलायम कुटी हुई पान-सुपारी चटनी जैसी बना कर ले आया, गुरु ने खाया। दो-तीन रोज खाया। वह क्या करता था, रोज मुँह में चबा कर मुलायम बनाता था, उसको हाथ में लेकर गुरु को जा कर के देता था। गुरु ने एक दिन कहा, ''अरे, तुम इतना सुन्दर कूटते हो। किस इमामदस्ते में कूटते हो?'' शिष्य अन्दर गया। एक मिनट में बाहर आया। गुरु देख करके स्तब्ध रह गये। शिष्य गर्दन को काट करके हाथ में ले कर आया। यह समर्थ रामदास के चरित्र में है। समर्थ तो थे। उन्हें मालूम हो गया क्या हो रहा है। सिर को पकड़ कर गर्दन पर रखा, उसे पूर्ववत् बना दिया। यह एक उदाहरण है शिष्यत्व का। वह भोला भाला था, जैसा आप खाने में करेगा, गुरु को भी वैसा ही करके दिया। कसौटी की परीक्षा आने में शिष्य अपने शरीर को भी कुछ नहीं समझता।

भारतवर्ष के गुरु-शिष्य परम्परा में गुरु-शिष्य सम्बन्ध के विषय में हमें आदर्श प्राप्त हैं, ऐसी गुरु भक्ति होती है, ऐसी गुरु सेवा होती है। शिष्य अपने आपको कुछ नहीं मानते, अपने आपको भूल जाते हैं। हर प्रकार की

सेवा करते हैं। लकड़ी काटने गया, उसी में लग गया। गैया चराने गया, गैया चराने लग गया। खेती बाड़ी करने वाला उसी में लग गया। पूछा नहीं कि हम ब्रह्मज्ञान के लिए आये थे, हमको काम पर भेज दिया। 'गुरु जो कहते हैं, बस वही हमारे लिए वेद-वाक्य है।' ऐसे शिष्य और ऐसी भावना वाले ही पाते हैं। गुरु कृपा अनुग्रह प्राप्त करके वह ब्रह्मज्ञानी बनते हैं। हरि ॐ!

२. गुरु–उपदेश–पालन का दैनिक अभ्यास

प्रिय आत्म स्वरूप!

आधुनिक युग में मानव के सामने गुरु महाराज ने सदाचार को अधिक महत्वपूर्ण बताया हैह्वह्व'सदाचार के बिना आध्यात्मिक जीवन जीना असंभव है। इसके बिना न कोई साधना संभव है और न ही आध्यात्मिक उपलब्धि संभव है।' ऐसा बार–बार जोर के साथ इस बात को गुरु महाराज ने सामने रखा है। बिना हमारा हृदय पवित्र हुए, बिना हमारा चित शुद्ध हुए, हम आध्यात्मिक जीवन में प्रगति और विकास नहीं कर सकते, सर्वथा नहीं। धार्मिक जीवन भगवद् साक्षात्कार के लिए अनिवार्य है, धार्मिक जीवन ज्ञान की प्राप्ति के लिए मूल आधार है। इस आधार पर ही हम अपनी साधना, योगाभ्यास, वेदांत–विचार आदि को आगे चला सकते हैं। अगर यह आधार नहीं है तो जैसे बुनियाद के बिना कोई भी विशाल भवन–निर्माण असंभव है। ऐसा मैं नहीं कह रहा, जो धर्मग्रन्थ हैं, शास्त्र हैं, पुराण हैं, भागवत महापुराण है, महाभारत है, रामायण है, जो भी धर्मग्रंथ सत्य सनातन धर्म से प्राप्त किए हैं, किसी भी ज्ञान ग्रंथ का स्वाध्याय करके देखें सब ग्रंथों में एक बार नहीं, दस बार नहीं, सौ बार नहीं, हजार बार यही उपदेश आप को मिलेगाह्वह्व'सदाचारी बनो', 'सद्गुणी बनो'।

यह संदेश, यह उपदेश आपको मिलता ही रहेगा। क्योंकि यह अपरिहार्य है, जैसे बिना द्वार खोले हम किसी भवन में प्रवेश नहीं कर सकते, आध्यात्मिक जीवन के अन्दर प्रवेश करने के लिए यह राजद्वार है। सदाचार, उत्तम चरित्र धार्मिक जीवन की प्रवेशिका है। इसी के द्वारा हम

प्रवेश कर सकते हैं। साधक का सबसे बड़ा अभ्यास, बड़ा कार्य, निरंतर अपने आपको सदाचारी बनाना, सदाचार से सम्पन्न होना और अपने स्वभाव को पवित्र बनाने की कोशिश करना है। मन के विचार में, हृदय की भावना में और दृष्टि में पवित्रता हो, अपनी वाणी में शुद्धता हो, व्यवहार में निर्मलता हो। किसी प्रकार का अपवित्र व्यवहार न हो। अपना समस्त स्वभाव, अपना शरीर और इसकी चेष्टा, सब पवित्र होना चाहिए, सब सात्विक होना चाहिए। हमारे धर्म-ग्रंथों में जिस प्रकार का आचरण बताया है, हमारी भारतीय संस्कृति में जिस प्रकार का शिष्टाचार बताया है; अवतार पुरुष, संत तथा अन्य महान व्यक्तियों ने हमारे सामने जो आदर्श रखे हैं, उसके अनुसार अपने चरित्र को, व्यवहार को, आचरण को बनाना चाहिए।

लगभग २०० साल पूर्व बहुत बड़े महापुरुष स्वामी नारायण हुए थे। उनका बार-बार यही आदेश थाह्वह्वसदाचारी बनो, तुम्हारा आचरण अत्यंत पवित्र होना चाहिए। काया-वाचा-मनसा निर्मल व्यक्ति होना चाहिए, धर्म को मत छोड़ो। हमारे सिक्ख धर्म के जितने भी दस धर्मगुरु हैं सबके उपदेश में एक यही बात है। भगवान के सामने तुम्हें अपने आपको धन्य बनना हो, उनकी दृष्टि में योग्य बनना हो, कृपा का पात्र बनना हो, तो तुम सदाचारी बनो। तुम्हारा आचरण व्यवहार निर्मल होना चाहिए। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, गौरांग महाप्रभु, इन सबके उपदेश हम देखें तो धार्मिक जीवन और सदाचार पर ही बल दिया है। काम-क्रोध-लोभ-मोह, निन्दा, अहंकार, अभिमान, दर्प को छोड़, सदाचारी जीवन बनाना होगा। 'चर्पट पंजरिका' स्तोत्र, 'भज गोविन्दम्'

स्तोत्र को देखें तो यही हैह्वह्वतृष्णा को छोड़ो, सदाचारी बनो, धार्मिक जीवन बनाओ, पवित्र आचरण रखो।

सनातन धर्म के बहुत बड़े संरक्षक, छत्रपति शिवाजी महाराज के सद्गुरुदेव समर्थ रामदास स्वामी बहुत बड़े सिद्ध महापुरुष थे, परम राम भक्त थे, और राम नाम के जप के द्वारा भगवान रामचन्द्रजी का साक्षात्कार किया, साक्षात दर्शन किया। उन्होंने कई धर्म ग्रंथों को लिखा, उसमें एक छोटा-सा कविता के रूप में, जैसा गीता में छोटा-छोटा श्लोक है, अपने मन को सम्बोधित करते हुए २०५ श्लोकों से समन्वित 'मनाचे श्लोक' की रचना की जिसमें कहते हैंह्वह्व'ए मन, तुम क्यों इस प्रकार से कुत्ते जैसे गली-गली मारे-मारे फिरते हो? जूठा खाते हो, क्या इन विषय-वस्तुओं के ऊपर तुम्हें घृणा नहीं है? भगवान इतना उत्तम नर-तन दिया है, मनुष्य बनाया है, बुद्धि दिया है, फिर भी तुम बुद्धि का प्रयोग नहीं करते हो। ऐसा तुम क्षुद्र अल्प वस्तु की तरफ जा रहे हो तब तुम्हारा कल्याण नहीं है। इस क्षुद्र व्यवहार को छोड़ो, उत्तम व्यवहार को स्वीकार करो। उत्तम सदाचारी बनो।'

हमारे इस राष्ट्र में, भव्य मातृभूमि भारतवर्ष में, जो भी धर्म ग्रंथ हैं, जो भी संत हुए हैं, जो भी गुरुजन हैं, सबने जीवन में सदाचार को बताया है। यही साधना है, योगाभ्यास है, जीवात्मा को परमात्मा के निकट पहुँचाने की प्रक्रिया है। जैसे नदी जाकर के सागर में पहुँचती है, ऐसे मानव को जाकर के दिव्यता में पहुँचाना, इन्सान को भगवान में जाकर पहुँचाना, जीवात्मा को परमात्मा के अनुभव दिलाना, इस कार्य को कहते हैं साधना, इसे ही कहते हैं योगाभ्यास। इसी को कहते हैं वेदांत, आध्यात्मिक जीवन। इसका तात्पर्य यही है कि वह तत्व परमात्मा है, परब्रह्म है, भगवान है, उसके पास पहुँचने

से, उसका अनुभव कर लेने से हमारे तमाम दुःख दूर हो जाते हैं, तमाम तापत्रय सदा के लिए समाप्त हो जाते हैं, उनकी प्राप्ति से हमारी समस्त समस्याएँ हल हो जाती हैं। फिर किसी प्रकार की चिंता नहीं है, शोक नहीं है, मोह नहीं है, बन्धन नहीं है, किसी प्रकार की फिकर नहीं है, किसी प्रकार का कष्ट-संकट इत्यादि है ही नहीं। इसी के लिए भगवान को जीवन का लक्ष्य बताया है।

संसार में रहते हुए, प्रपंच में व्यवहार करते हुए, कर्तव्य कर्मों को पूरा करते हुए यदि साधना कर के भगवद् तत्त्व को पा लेंगे, तो यहीं पर इसी जीवन में सब सौख्य और आनन्द का अनुभव संभव है। जो चीज प्रपंच आपको नहीं दे सकता है, वह परमात्मा के द्वारा प्रपंच में रहते हुए भी आप प्राप्त कर सकते हैं। आध्यात्मिक जीवन का, साधना, योगाभ्यास का यही उद्देश्य है, यही प्रयोजन है। सर्व दुःख-निवृत्ति, परमानन्द की, परम शांति की प्राप्ति की अनुभूति हर साधक के लिए संभव है। इसलिए परमात्मा के निकट पहुँच करके, परमात्मा में प्रवेश करके, परमात्मा के अनुभव को प्राप्त करके जितनी मात्रा में हम बढ़ते जायेंगे, उतने-उतने हम उनके निकट पहुँचते जायेंगे। अंत में जाकर के पूर्ण रूप से उनके जैसा हमारा स्वभाव बन जाय, बिल्कुल पवित्र, सात्विक, दिव्य बन जाय, फिर कोई भी चीज आपको भगवद् प्राप्ति में रोक नहीं सकती। ऐसी संसार में कोई शक्ति नहीं है जो भगवद् साक्षात्कार से आपको वंचित रखे। पूरा का पूरा उन जैसे बन जाने में, उनकी प्राप्ति शत-प्रतिशत निश्चित है। उनके जैसा बनना है तो उनकी परिपूर्ण दिव्यता के विपरीत जो हम में है, उसको सफा करना चाहिए। जितनी जितनी वह घटती जायगी और उतनी उतनी दिव्यता, पवित्रता अन्दर बढ़ती जायगी, आप उनके निकट पहुँचते जायेंगे। जैसे-जैसे उनके निकट

पहुँचते जायेंगे उतना-उतना आपके मन में, आपके जीवन में शांति और आनन्द का अनुभव बढ़ता जायगा।

बहुत सुन्दर एक सरल साधारण उपमा देकर के रामकृष्ण परमहंस देव ने इस बात को समझाया है। ''सागर के कहीं बहुत दूर देश में जो गर्म इलाका है, जहाँ कभी कोई शीतलता नहीं है, हमेशा गरमी है, हवा गरम चलता है, वहाँ निवास करने वाला कोई आदमी सागर के प्रांत के विषय में सोचता है कि वहाँ कितनी सुंदर हवा चलती है, कितना अच्छा है, वहाँ पर तरावट है, सम शीतोष्ण है, ऐसा सुना तो है लेकिन यात्रा नहीं की है। वह तय कर लेता है, जीवन में एक बार जरूर ऐसे प्रदेश में जाकर, देखकर कुछ दिन वहाँ रहकर आना चाहिए। उस आबहवा को हमें भी अनुभव करना चाहिए। यात्रा के लिए सोचा, बात आजकल की नहीं है, पुरातन समय की है। अनेक प्रदेशों, जंगल, पर्वत, गाँव, कस्बा, नगरी पार करके जब सागर के निकट तक पहुँच गया तो कुछ परिवर्तन उसे हवा में मालूम हो जाता है। वहाँ वातावरण में, हवा में एक ताजगी है सागर की शीतल समीर वहाँ पर बह रही है। आह! उस स्वच्छ सागर से आने वाली हवा है, एक अलग प्रकार का अनुभव है। इसी तरह से सच्चिदानन्द सागर, प्रशांत अनन्त शांति के सागर जो भगवान हैं उनके निकट पहुँचते-पहुँचते, संसार के दुःख-दर्द, चिंता-शोक, अशांति इत्यादि सब घटती जाती है और शांति और आनन्द बढ़ता जाता है।'' इस उपमा को देकर के श्री रामकृष्ण परमहंस ने समझायाह्लह्लभगवान के निकट पहुँचने से प्रपंच का तापत्रय पीछे हट जाता है; और भगवान के आनन्द और शांति का अनुभव होने लग जाता है।

किसी ने गुरु महाराज से पूछा, हम जब ध्यान करते हैं, अभ्यास करते हैं, हम आगे बढ़ रहे हैं कि नहीं, प्रगति हो रही है कि नहीं कैसे मालूम

होगा? क्या निशान हैं, इसके क्या लक्षण हैं? गुरु महाराज बोलेङ्घङ्घ''तुमने चलना है आगे, ध्यान करते रहना है, बस यही बात है। तुम्हारे कोई दो सींग नहीं निकल आयेंगे, मोर पंख नहीं निकलेगा, तुम जैसे हो वैसे ही रहोगे। लेकिन अपने मन में एक अद्‌भुत नवीन शांति का अनुभव करने लग जाओगे, और किसी खटपट के बीच मन बिल्कुल संतुलित रहेगा। कोई कुछ बोल देगा, कुछ हो गया तो आपका मन व्याकुल नहीं होगा। पहले जो चीज आपको व्याकुल करती थी जैसे-जैसे आप ध्यान-भजन करते जायेंगे, प्रगति होती जायेगी। दो साल, चार साल, पाँच साल के बाद, बाहर की गड़बड़ से, आप व्याकुल नहीं होंगे।''

कहने का तात्पर्य यह है कि भगवद् गीता के द्वितीय अध्याय में स्थितप्रज्ञ के लक्षण और बारहवें अध्याय में भगवान की स्वयं दिव्य वाणी के द्वारा भक्त के लक्षण जो बताये गये हैं, वे सब आपके अन्दर आते जायेंगे, अपने अन्दर उसको अनुभव करते जायेंगे। सहिष्णुता, शांति, एक संतुलित अवस्था, ये सब लक्षण हैं, कि हम साधना में, ध्यान में कुछ प्रगति कर रहे हैं कि नहीं।

यदि गंभीर भाव से तुम सच्चे साधक बनना चाहते हो, तुम्हारी आध्यात्मिक आकांक्षा में कोई गंभीरता है, गहराई है, वास्तविकता है, भगवान के पास पहुँचना चाहते हो तब इन पांच महाव्रत को, प्रतिज्ञाओं को लेना पड़ेगाङ्घङ्घअहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह। किसी भी हालत में हों, इसके लिए देश-काल-समय का कोई बन्धन नहीं है। वहाँ तो हो सकता था, यहाँ नहीं हो सकता, ऐसा कहना अनुचित है। सब समय में, सब स्थान में, सब परिस्थिति में, सब हालत में साधक को पालन करना ही

पड़ेगा। पतंजलि महर्षि के 'योग दर्शन' के प्रथम अंग के विषय में यह व्याख्या है।

सत्यवादी बनना होगा। सत्यव्रती बनना होगा। अहिंसात्मक व्यवहार को ही अपनाना होगा, अभ्यास करना होगा। पवित्र आचरण, जीवन में सादगी को ही रखना होगा। जो अपने प्रारब्ध के अनुसार भगवान ने तुम्हें दिया है, उसी से तृप्त, उसी से संतुष्ट होना चाहिए। अन्य किसी वस्तु पर अपनी आशा की दृष्टि नहीं डालना। यह मुझे प्राप्त होना चाहिए जो अपना नहीं है, उस पर दृष्टि डाला रावण ने, तो इतना बड़ा होते हुए भी उसका विनाश हुआ, इस को कहते हैं अस्तेय। महर्षि पतंजलि कहते हैंह्वह्वअष्टांग में प्रथम अंगह्वह्वये पांच व्रत लेकर, योग मार्ग में प्रवेश करना होगा भाई! अगर इनको एक तरफ रख के योग मार्ग में प्रवेश कर लिया तो भागे तो जा सकते हैं किंतु पैर फिसल कर नीचे गिर जायेंगे। भ्रष्ट हो जायेंगे, नष्ट हो जायेंगे। आप योग भ्रष्ट हो जायेंगे।

अपने ज्ञानोपदेश में, अपने दिव्य जीवन के संदेश में गुरु महाराज कहते हैंह्वह्व''देखो! तुम बड़ी समाधि भले ही नहीं लगाओ, बड़े-बड़े वेदांत ग्रंथ को पढ़कर के वादविवाद करने में भले ही होशियार न होओ, लेकिन अगर तुम सदाचारी हो, सत्यव्रती हो, सच्चरित्र पालन करते हो, संयमी हो, सबसे मित्रता का व्यवहार रखते हो, मिताहारी हो, तुम्हारा आचार-व्यवहार वह हो, जैसे गीता में कहा गया है, **'युक्ताहारविहारस्य'** यही बड़ी चीज है। इसलिए इन बातों को साधारण मत समझो। सबसे पहले तुम अच्छा इंसान बनो। एक आदर्श व्यक्ति बनो, योग-ध्यान इत्यादि अपने आप आ जायेगा। पहले जो करना है उसे पहले किया तो दूसरा जो करना है, अपने आप तुम्हारे सामने आ जायगा; तुम कर सकते हो।'' ऐसा कह करके

गुरु महाराज ने आध्यात्मिक जीवन बनाने के वास्ते साधकों को, मुमुक्षुओं को दिव्य जीवन के मार्ग में ले आने के वास्ते संस्थान को चलाया। संस्था में प्रवेश करके दिव्य जीवन अपना कर आध्यात्मिक साधना में लगने के लिए जिन्होंने कहा कि मैं भी दिव्य जीवन अपनाऊंगा, साधक बनूंगा, योगाभ्यास करूंगा, तो वे बोलते थे, ''अगर ऐसा करना है, प्यारे! तो पहले मुझे लिखकर देना हैह्वह्व'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपने जीवन में और दैनिक व्यवहार में शुद्ध आचरण, सत्य का पालन करूँगा। क्रोध-द्वेष-घृणा सबसे बिल्कुल मुक्त होकर अहिंसात्मक व्यवहार, दयामय व्यवहार रखूँगा। मेरी वाणी से, मेरे वर्ताव द्वारा सबको शांति मिले, सुख मिले, किसी को दर्द नहीं मिले। केवल मात्र परहित के लिए मैं अपने व्यवहार को बनाऊंगा, चाल चलन आदर्श बनाऊंगा।' ऐसा हमको लिखकर प्रतिज्ञा दो, तब हमारी संस्था जो दिव्य जीवन बनाने के लिए है, उसका सदस्य बन सकते हो।''

गुरु महाराज के ज्ञान बोधन का नवनीत है, पवित्र और ऊँचा चरित्र, उत्तम चरित्र, उत्कृष्ट चरित्र और शुद्ध आचरण, सदाचार, धार्मिक जीवन। वे कई प्रकार से बोले हैं। अठारह प्रकार के सद्गुणों को हमें बता कर कहते हैं उसका अभ्यास करो। फिर क्या होगा? देश-काल से परे जाकर के उस अनन्त अवस्था में तुम संस्थित हो जाओगे। अनेकता में एकता का दर्शन करने के लिए दृष्टि खुल जायगी। भगवद् गीता के सोलहवें अध्याय 'दैवासुर सम्पद विभाग योग' में दैवी सम्पदा को अपनाने से मोक्ष मिलता है, ऐसा स्पष्ट बोलते हैं। गुरु महाराज का भी यही सदुपदेश था, सदाचारी बनना चाहिए, दुराचारी नहींह्वह्व

रिश्वत नहीं लेना　गोविंदा
सत्य बोलो　गोविंदा

ब्रह्मचर्य अभ्यास करो गोविंदा
भले बनो, भला करो गोविंदा
दयालु बनो, करुणाशील बनो गोविंदा

गुरु महाराज ने कहा, ''सच्चा सौन्दर्य क्या है? आदमी का शक्ल नहीं, शक्ल की सुन्दरता नहीं, बल्कि सच्चा सौन्दर्य शुद्ध आचरण, सच्चरित्रता है।'' सच्चरित्रवान को गुरु महाराज बड़ा सम्मान देते थे। कोई छोटा व्यापारी हो, नौकर हो, कोई साधारण आदमी भी हो, उसे देखकर कहते, ''नहीं, नहीं, यह साधारण आदमी नहीं, बड़ा चरित्रवान है।''

गुरुमहाराज कहते थे, ''कुछ लोग ज्ञान को शक्तिशाली मानते हैं, परन्तु मैं सदाचरण को अधिक शक्तिशाली घोषित करता हूँ।'' गुरुमहाराज की तीन सौ पुस्तकों में लिखे उपदेश का जो केन्द्रीय उपदेश है, उसका सूक्ष्म तत्त्व यह हैह्वह्व''हे मानव! तुम भगवत्प्राप्ति के लिए आये हो। तुम्हारे जीवन का मुख्य लक्ष्य हैह्वह्वभगवत्प्राप्ति। उसको प्राप्त कर लिया जीवन सफल हो गया। उसको नहीं प्राप्त कर सके तो जीवन निष्फल है। रद्धी बनकर ही रहेंगे। कूड़ा-कचरा बन कर ही रह जायेंगे। काम-क्रोध लोभ-मोह मद-मत्सर झूठ-कपट, अशांति, संघर्ष, अज्ञान इत्यादि। यही हमारी व्याधि है, सबसे बड़ा संकट है। अज्ञान के परिणाम को भोगते रहेंगे। हाय! हाय! करते रहेंगे। रोयेंगे। अन्दर की सुप्त दिव्यता का परिपूर्ण विकास करके, दिव्य बनकर, तेजस्वी और यशस्वी जीवन बनाना है, जीवन में हर प्रकार की परिपूर्णता, सुन्दरता का विकास करना है, आत्मज्ञान को प्राप्त करना है। इसी के लिए तुम आए हो, परिस्थिति कैसे भी हो किंतु इसे मत छोड़ो, इसमें लग जाओ। हर तरह से इसमें लग जाओ बाकी होता रहेगा। नियति को बदल नहीं सकते। प्रारब्ध कर्म को भोगना पड़ेगा। इससे तुम मुक्त नहीं हो सकते।

दुनिया जैसी है वैसी रहेगी। तुम लक्ष्य को नहीं भूलो उसकी तरफ लगे रहो। यह करना चाहिए। कल करेंगे, परसों करेंगे, रिटायर होने के बाद करेंगे, यह बड़ी भूल है, बहुत गलत ख्याल है। मौत निश्चित है, किस वक्त आयगी, पता नहीं। पहले युगों के अनुसार जैसे हमारी आयु कोई हजारों साल, दस हजार साल ऐसा नहीं। अल्पायु है। कलियुग के प्राणी हो तुम्हारी अल्पायु है। समय तो एकदम जाता है। इसलिए उठो। जागो। जल्दी साधना में लग जाओ। यह जिन्दगी बहुत छोटी है, समय एकदम तीव्र गति से चल रहा है।''

इसलिए हमें इस भूल में नहीं रहना चाहिए कि साधना बाद में करेंगे। अभी करो, साधना में अभी लग जाओ। भगवद् साक्षात्कार के बिना शांति और आनन्द असंभव है, असंभव है, असंभव है। इसी में जीवन की सफलता है। यही तुम्हारा मुख्य कर्तव्य है। इसमें लग जाओ प्यारे। प्रारब्ध कर्म के अनुसार छोटा-मोटा सुख-दुःखादि आता है। सहन करो और यह कहा कि भगवद्प्राप्ति के लिए घरबार छोड़कर जाने की कोई आवश्यकता नहीं, जहाँ पर तुम हो, जिस तरह तुमने अपने जीवन को बनाना है, बनाते जाओ। लेकिन त्याग करो देहात्म भाव का 'मैं शरीर हूँ'। इस गलत ख्याल का त्याग करो। यही तुम्हारी भूल है, यही तुम्हारा बंधन है, यही तुम्हारा संसार है, यही प्रपंच है। जीवन्मुक्त के लिए भी यही प्रपंच है, उनके लिए भगवान कोई अलग प्रपंच की सृष्टि नहीं करता। जीवन्मुक्त पुरुष, पहुँचा हुआ पुरुष भात खाता है, रोटी खाता है। उनके लिए भगवान कोई सोने की थाली में अलग बना कर नहीं भेजता। उनके अन्दर आसक्ति नहीं है, आपके अन्दर आसक्ति है। उसे निकालो, अनासक्त बनो। जहाँ पर हो वैसे ही रहो। प्रपंच में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने से भगवान मिल जाता है, ऐसी

कोई बात नहीं। इसलिए अपने-अपने कार्य को करते हुवे भगवान को प्राप्त कर सकते हो, यह गुरुमहाराज का केन्द्रीय संदेशा है, आजकल के मानव के लिए।

गुरु महाराज ने देखा सर्व संग परित्याग करके एकदम जंगल में जाकर के बैठना, बीसवीं शती के आदमी के लिए असंभव है। बड़ा प्रैशर का जीवन है, कई प्रकार के कार्य करने हैं, लेकिन कार्य करते वक्त यह भावना को त्याग दो, 'मैं मर मिटने वाला एक छोटा जीव हूँ'। उसकी जगह पर याद करो 'अजर-अमर-अविनाशी आत्मा हूँ, मैं परमात्मा की संतान हूँ, उनका अंश हूँ। इसलिए मेरे लिए जन्म भी नहीं है, मृत्यु भी नहीं है, नाम रूप से रहित, जन्म-मरण रहित मैं अविनाशी आत्मा हूँ। कभी भी बदल नहीं सकता हूँ। हर हाल में सच्चिदानन्द आत्मा हूँ।' त्याग का यही सच्चा स्वरूप है। सच्चा त्याग है, देहात्मभाव का त्याग, अहंकार का त्याग, स्वार्थ का त्याग, आसक्ति-ममता-मोह का त्याग। भर्तृहरि का 'वैराग्य शतक' पढ़कर और अच्छे-अच्छे सद्ग्रन्थों को पढ़कर, गुरुमहाराज की 'वैराग्य माला' और अन्य किताबों को पढ़कर यह त्याग तुम्हारे अन्दर आ गया, तो प्रपंच में रहकर भी प्रपंच तुम्हें कुछ नहीं कर सकता।

जो कुछ काम करते हैं, उसे ईश्वरार्पण करके भगवान के चरणों में सौंप देना चाहिए। और व्यवहार के बीच में निरंतर भगवच्चिंतन करते रहना चाहिए। अपने गृह को साधना क्षेत्र बना लेना चाहिए। अपना जीवन आध्यात्मिक बनाने के लिए घर हमारा साधना-क्षेत्र है; यह घर प्रपंच नहीं है, इस घर में प्रपंच और संसार प्रवेश नहीं कर सकता क्योंकि यह भगवान का धाम है। यह घर पवित्र स्थान है। चारों धाम इस घर में हैं, रामेश्वर, द्वारका, पुरी, जगन्नाथ, बद्रीनाथ इस घर में हैं। काशी इस घर में है,

वृन्दावन-अयोध्या इस घर में हैं। गंगा-यमुना-सरस्वती-गोदावरी-नर्मदा-सिंधु-कावेरी सप्त तीर्थ यहाँ पर विराजमान हैं; यह हमारा साधना धाम है। ऐसी भावना को रख कर, घर को अपनी साधना का धाम समझ करके निरासक्त जीवन आप बितायें, निरंतर भगवान का सुमिरन करें, हमेशा भगवान के अस्तित्व को अनुभव करें, घर में सुबह-शाम बैठकर ध्यान-भजन इत्यादि करें। घर में कई प्रकार के धार्मिक चित्र, संतों के चित्र रखें। आध्यात्मिक ग्रंथों को पढ़ें तब घर पवित्र बनेगा। उस घर में कलिकाल का वातावरण नहीं आ सकता, संसार का कोई कलंक नहीं आ सकता। काम करते-करते, उठते-बैठते, आते-जाते, खाते-पीते, आराम में, काम में, घर के अन्दर, घर के बाहर हमेशा भगवच्चिंतन करत रहें। नाम निरंतर रटते रहें। जो कुछ कार्य हैं करते रहें। ऐसा गीता के १८ अध्याय में श्रीकृष्ण परमात्मा ने कहा हैह्वह्व

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

अपना अपना ड्यूटी को करते जाओ, भगवान के चरणों में अर्पण करते जाओ, हमेशा उनको याद रखो, वह हमेशा हमारे सामने हैं, यह सर्वसाधारण मानव के लिए गुरु महाराज का दिया उपदेश है। इस प्रकार से कर्तव्य कर्म के रूप में मैं उनका पूजन करता हूँ, आराधना करता हूँ। ऐसी भावना रखके कर्तव्य कर्मों को एक योग का स्वरूप दे देना है। चपाती बनाने के लिए आटा गूँधते समय सोचना कि यह प्रभु के लिए कर रही हूँ, भात पकाती हूँ तो अपने प्यारे इष्ट देव के अर्पण के लिए मैं भात पका रही हूँ और हर प्रकार की चीज सब्जी काटना है, बर्तन मांजना है, कपड़ा धोना है, झाड़ू करना है, यह भगवान का घर है, भगवान का वैकुण्ठ धाम है इसको मैं साफ कर रही हूँ। सब कार्य को भगवान के साथ जोड़ देना। ऐसे भाव के

द्वारा प्रत्येक कार्य को, चाहे वह छोटा से छोटा भी क्यों न हो सब बड़ा से बड़ा दिव्य योग बन जाएगा। यदि भगवान के साथ सम्बंध आप बना देंगे तब सब योग हो जायगा।

जो भगवान के साथ मिला देता है, वह योग है। यदि इस दिव्य भावना से भगवान के साथ सम्बन्ध बना दें तो वह योगमय जीवन हो जायेगा। नित्य प्रति थोड़ा समय लेकर भक्ति के साथ उनकी उपासना करो, भजन करो। सेवा करो, परोपकार करो, सर्वत्र प्राणिमात्र में उनको देखो। पति में, बच्चों में, पत्नी में, माता-पिता में भगवान को देखकर उनकी सेवा करो, वह भजन और ध्यान बन जायगा। थोड़ा बहुत सगुण-साकार मूर्ति-उपासना करो। निराकार उपासना करना है तो प्रणव के चिह्न के ऊपर ध्यान करो। अन्ततोगत्वा ध्यान में पहुँचना है, इसलिए अभी से उपासना के द्वारा, ध्यान के द्वारा मन में एकाग्रता को बसाने के लिए कोशिश करो। सदा-सर्वदा यही विचार मन में रख के जिन्दगी बनाओ, हम यहाँ प्रपंच में इसीलिए हैं कि भगवद् साक्षात्कार प्राप्त करें। योगाभ्यास करो, ब्रह्म विचार करो। ऐसा करते-करते तुमको शांति मिलेगी।

गुरु महाराज जी की सेवा जो करना चाहता है, उनको गुरुमहाराज के संदेश-उपदेश का सारांश जो आपको दिया है, उसको बड़ी पवित्र भावना से स्वीकार करके अपने जीवन में पालन करना होगा। प्रतिदिन सूर्योदय के समय मन में सोचना चाहिएह्नह्नअभी प्रात:काल हुआ है, नये दिन में मैं प्रवेश कर रहा हूँ, इस दिन को मैं आदर्श दिन बनाऊंगा। आज रात होने तक दिन में मैं जितना परोपकार कर सकता हूँ, जितना ध्यान, भजन कर सकता हूँ, जितना मैं आध्यात्मिक प्रगति कर सकता हूँ जीवन को हर तरह से परिपूर्ण बना करके मैं इस दिन को बनाऊँगा। ऐसा प्रण लेकर उस दिन में प्रवेश

करना चाहिए। प्रतिदिन यह बात दोहराना चाहिए, नहीं तो क्या होता है? एक दिन प्रतिज्ञा कर ली, डायरी में उसको लिख दिया तो पहला हफ्ता तो तेजी से चलता रहेगा, उसके बाद फिर १० जनवरी आगई, १५ जनवरी आई, आहिस्ते-आहिस्ते ढीले पड़ जाते हैं। फरवरी में इसका कोई नामो निशान नहीं, जैसे पहले थे वैसे ही हैं। नये साल का सब उड़ गया होता है, क्योंकि यह माया का जाल है। मन की गांठें हैं। मन की गति हमेशा नीचे जाती है, इसलिए नवीन जागृति को अपने भाव में लाकर, हम नयी प्रतिज्ञा लेकर करते जायेंगे तब जीवन की सफलता बिल्कुल निश्चित है। ऐसा ही होना चाहिए। यही गुरु महाराज के आध्यात्मिक उपदेश का सारभूत तत्त्व है। हमारी गुरु भक्ति और गुरु सेवा को व्यवहार में लाकर उसको हम मूर्तिमंत सजीव बना सकते हैं। उन्होंने जो साधना उपदेश बताया, उसका अपने जीवन में सब पालन करना चाहिए। यही गुरु भक्ति का महान अभ्यास है। यही उत्तम गुरु-सेवा है, यही उत्तम गुरु भक्ति है। हरि ॐ तत्सत्!

३. मानव जीवन के तीन हेतु[१]

साधक वृन्द!

सृष्टि-निर्माता ने सृष्टि के ऊपर एक शासन बना के रखा है, उसके प्रभाव से हर एक जीवात्मा यहाँ आता है; और उस शासन के आधार पर अपने जीवन में कई प्रकार के अनुभवों को अनुभूत करके यहाँ से जाता है। कर्म, कर्म-फल भोग का शासन है। अंग्रेज़ी में कहें तो 'कॉज़ एण्ड इफैक्ट' (कार्य और कारण)। एक और तरह से जानना है तो 'ऐकशन एण्ड रिऐकश्न' (क्रिया और प्रतिक्रिया)। जो भी हम करते हैं, उसका परिणाम अवश्यमेव होता है। जैसा कार्य है वैसा ही परिणाम होता है। अच्छा कार्य हो तो उसका परिणाम भी अच्छा होता है। कार्य अच्छा नहीं हो तो उसका परिणाम भी अच्छा नहीं होता है। जैसा बीज बोते हैं, वैसा ही फल प्राप्त करते हैं। नीम का बीज बोया तो नीम का कड़वा फल हमें मिलेगा। अंगूर का बीज बोया तो अंगूर का मीठा फल मिलेगा। जीवात्मा यहाँ कर्म, कर्म-फल-भोग का जो शासन है, उसके अनुसार शुभाशुभ कर्मों के सुख-दु:खादि का भोग करके उन्हें अदा करने के लिए आता है।

मानव के लिए तो ऐसा है। परन्तु पशु-पक्षियों के ऊपर यह शासन लागू नहीं है। क्यों? वह जानबूझ कर कुछ नहीं करते। पशु हो, पक्षी हो, प्रकृति के अनुसार करते हैं। मन में विचार लेकर, कोई संकल्प लेकर समझकर कोई कर्म नहीं करता है। उनके अन्दर अहंकार नहीं होता। हमारे अन्दर जिस प्रकार की अहंता हैह्वह्व''मैं करने वाला हूँ। मैं करता हूँ; ऐसा

[१] साधना शिविरह्वह्व१३.२.१९९०, याजपुर, दिव्य जीवन संघ शाखा

करूंगा, वैसा करूंगा'', ये सब प्रक्रिया हमारे अन्त:करण में हैं, पशु-पक्षियों में नहीं हैं। इसीलिए समस्त संसार में उनकी चेष्टा एक ही तरह की होती है। कौआ है, चींटी है, मच्छर है, मक्खी है, भारतवर्ष में जिस तरह से रहेंगे, वैसे ही जर्मनी में, फ्रांस में, चीन में, जापान में, इंग्लैंड में, अमेरिका में रहेंगे। उनकी चेष्टा यहाँ अलग, वहाँ अलग, ऐसा नहीं है। लेकिन मानव की चेष्टा हर देश में, बाहर विदेश में भिन्न-भिन्न है। हर एक मानव की सोच समझ, और अपना कर्तृत्व अभिमान अलग है। इसलिए उन पर कर्म, कर्म-फल भोग का शासन लागू होता है, अन्य प्राणियों पर नहीं। यह मानव की ही ऐसी अवस्था है, जो उसके जगत में आने का कारण कहा जाता है। हम मानव बन कर आये हैं, इसलिए जीवन के कुछ उद्देश्य हैंह्वह्वप्रथम उद्देश्य यही, कर्म, कर्म-फल के भोग का शासन।

जीवन के लिए भगवान ने एक प्रकार का सिद्धांत बना लिया है। वह क्या है? विकास का सिद्धांत। जब किसी चीज का प्रारंभ होता है तो उसका स्वरूप बहुत छोटा-सा रहता है। लेकिन दिन-प्रतिदिन वह वृद्धि को प्राप्त करता जाता हैह्वह्वमाने विकास और प्रगतिशील समृद्धि का जीवन में एक व्यापक शासन है। प्रकृति में देखें, हर चीज में देखें, प्रारंभ में बहुत छोटा रूप होता है। उसके बाद दिन-प्रतिदिन वह बढ़ता, बढ़ता, बढ़ता जाता है। उसके अन्दर कई प्रकार की क्षमताओं का, शक्तियों का विकास होता जाता है। और वह इस तरह से आगे बढ़ता जाता हैह्वह्वऊर्ध्वगामी विकास, प्रगति, समृद्धि। कहाँ तक? जब तक वह परिपूर्णता को नहीं पा लेता, वह बढ़ता जाता है।

फुलवाड़ी में पौधे पर पहले एक छोटी-सी कली आती है, जिसमें न रंग, न सुगंध, न कोई सौन्दर्य, न कोई आकर्षण शक्ति। कुछ भी नहीं केवल

एक छोटी-सी कली। पुष्प रूप में आने से पहले यही शासन, यही प्रगति, विकास, परिपूर्णता की प्राप्ति का जो नियम है, उसके अन्दर बड़े वेग से तीव्रतापूर्वक चालू है, सक्रिय है। इस विश्व में हर एक वस्तु में, हर एक जीवित वर्ग में, एक छोटी-सी घास ही क्यों न हो, वृक्ष ही क्यों न हो। एक पक्षी छोटा-सा अंडा देता है, जो एक छोटे-से पत्थर के टुकड़े जैसा रहता है, ऐसा लगता है कि यह जड़ है, इसके अन्दर कुछ है ही नहीं। लेकिन उसके अन्दर जीवन-शक्ति है, सुन्दरता है, उसके अन्दर तीव्र गति से उड़ने की क्षमता है, परन्तु गुप्त रूप में। उसके अन्दर सुन्दर आवाज है, मधुर आवाज है, पक्षी का सुन्दर गान है। कोकिल के अंडे के अन्दर कोकिल की मधुर आवाज छिपी है। मोर के अंडे में मोर का सौंदर्य है। एक बड़ी चील के अंडे में एक किलो मीटर, दो किलो मीटर आकाश में ऊँचे उड़ने की शक्ति है, लेकिन गुप्त रूप में। प्रगति की ओर सक्रिय कार्य उसके अन्दर हो रहा है। आहिस्ते-आहिस्ते अंडे में छोटा-सा पक्षी बनता है, वह अंडे से बाहर आता है। काल क्रमेण उसके अन्दर जो गुप्त रूप से, अव्यक्त, अप्रकट रूप से जो भी क्षमताएँ थीं उनका विकास होता है। पहले पेड़ पर पक्षी का अंडा जो पत्थर की गोली जैसा लगता है लेकिन अब, अहा! कितने वेग से उड़ता है, उसके अन्दर क्या सुन्दर रंग-बिरंगे पंख रहते हैं, कितनी सुन्दर आवाज करता है। प्रात:काल उठकर अपने सुन्दर मधुर गीत से सारे जगत को जगाता है। यह एक अद्‌भुत बात है।

हमारे अन्दर अनन्त शक्तियाँ, अनन्त क्षमताएँ हैं, अनन्त सौन्दर्य है, अनन्त सद्‌गुण हैं, जो सब गुप्त रूप में हैं, उसका विकास नहीं हुआ है। जीवन में आने का आपका द्वितीय कर्तव्य, द्वितीय उद्देश्य है, नियम के आधार पर प्रगति को प्राप्त करना। आपके अन्दर सुप्त सुन्दरताओं, क्षमताओं के

विकास की आपको चेष्टा करते जाना है। इसी को कहते हैंह्वह्वआत्म विकास, सैल्फ कल्चर। अन्दर जो है उसे बाहर प्रकट करने की कोशिश करना है। मनोयोग से कोशिश करनी चाहिए। इसकी विधा को, इसकी कला को सीखना चाहिए। सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करना चाहिए, ऐसी ज्ञान वार्ता को बैठ करके सुनना चाहिए।

इस प्रकार मानव व्यक्तित्व की परिपूर्णता की सब सामग्री हमारे अंदर निहित है। हम 'रोटी, कपड़ा और मकान' के वास्ते प्राइमरी स्कूल में जाते हैं, मिडिल होने पर हाईस्कूल पास करते हैं। इंटरमीडिएट, बी.ए., बी.एस.सी., एम.ए., एम.एस.सी. करके कोई इंजीनियर बनता है, कोई डॉक्टर बनता है। ये सब गुजारा करने के लिए, जीवन-यापन-हेतु सिद्ध होता है। परन्तु यह जीवन-उद्देश्य को पूरा नहीं करता। इसे तो 'कमाई के वास्ते पढ़ाई' ही कहा जायगा। कितना भी बड़ा विश्वविद्यालय हो, यूनिवर्सिटी हो, कोई भी डिग्री हासिल करें, इंजीनियर, इलैक्ट्रानिक आदमी, डॉक्टर, स्पैशलिस्ट सर्जन, कुछ भी बनें, लेकिन इससे आपके जीवन का दूसरा मुख्य उद्देश्यह्वह्वहीरक जैसा एक आदर्श मानव व्यक्ति बनना तो पूर्ण नहीं हो पायेगा।

मानव-जाति के लिए अमूल्य ऐश्वर्य के रूप में आपका जीवन होना चाहिए। क्योंकि बार-बार तो मनुष्य रूप में आना है या नहीं पता नहीं। अब एक बार आये हैं, कुछ समय रहकर चले जाना है। ऐसे समय में मानव जाति नामक आकाश मंडल में बड़ा तारा, बड़ा नक्षत्र जैसे चमकना चाहिए। आपके अन्दर यह सजगता होनी चाहिए, एक बोध होना चाहिए, एक विकास, एक जाग्रति होनी चाहिए कि हम एक मानव बनकर आये हैं। भगवान ने हमें सब कुछ दिया है, बुद्धि दी है, मन की चिंतन भावना दी है,

सब सोच समझ कर, विचार करके हम अपने आपको मानव-जाति के जगत में एक आदर्श मानव-व्यक्ति बनकर अपने द्वारा मानव-समाज को सुन्दर बनाना चाहिए, उसे सम्पन्न करना चाहिए। हमारे रहने से मानव समाज का ऐश्वर्य बढ़ना चाहिए, हमारे जीवन से, हमारे व्यवहार से वर्तमान समाज की स्थिति-परिस्थिति को और अधिक ऊँचा उठना चाहिए। अपने जीवन का आपको यही उद्देश्य बनाना चाहिए। हमें मानव जाति के ऊपर धब्बा नहीं होना चाहिए। मानव जाति की इज्जत को कम नहीं करना चाहिए बल्कि इज्जत बढ़ाना चाहिए।

संक्षेप में आपके जीवन का उद्देश्य आदर्श मानव-व्यक्ति बन कर के, मानव मात्र के इस जीवन में अपनी जीवन धारा को सम्मिलित करके, पवित्र बना कर के, चारों ओर सुगंधि को फैलाकर मानव जीवन की भूमिका को ऊँचा उठा करके आप वापिस जायेंगे तो आपका परम सौभाग्य होगा। यह मानव जीवन आपके लिए एक सुनहरी अवसर है। आपके व्यक्तित्व से मानव समाज लाभान्वित होना चाहिए। अपना व्यक्तित्व ऐसा आदर्श बनाने के लिए आपको योजनाबद्ध कार्य करना होगा। यही जीवन का शास्त्र है, यही जीवन की कला है। यह जो सीखता है वह मानव धन्य है। मानव-जगत में एक आशीर्वाद के रूप में, एक सुगंधि के रूप में, प्रकाश के रूप में वह होकर जाता है। यह कार्य अब तक आपने नहीं किया तो आज से शुरू करें और जहाँ पर आप है वहाँ से शुरू करें। इसके लिए कोई अलग विश्वविद्यालय नहीं है, आपका जीवन क्षेत्र ही विश्वविद्यालय है, आपका जीवन क्षेत्र ही इसका क्रिया क्षेत्र है।

जैसे शरीर को सुन्दर, हृष्ट पुष्ट बनाने के लिए जिमनैजिय़म में जाकर दंड बैठक करते हैं, कई प्रकार के यंत्रों को रखकर व्यायाम करते हैं। लेकिन

व्यायामशाला में जाकर ही आप बलवान, पहलवान बन सकते हैं, ऐसा नहीं है, यदि ये सब घर में भी रखें तो आप पहलवान बन सकते हैं। दंड बैठक करें। घर के बैक गार्डन में जाकर छोटी जगह में ही सही, व्यायाम-आसन करें, सूर्य नमस्कार करें। व्यायामशाला में ही क्यों जाना? इसी प्रकार से यह आत्मविकास का कार्य हर व्यक्ति को अपने-अपने घर में करना चाहिए। इसके लिए प्रेरणाप्रद पुस्तकों को पढ़ना चाहिए।

हमारे सम्मुख आदर्शों की कोई कमी नहीं है। भारतवर्ष पुण्यभूमि है। इसका पूर्व इतिहास उज्ज्वल इतिहास है। अनेक महान हस्तियाँ यहाँ आकर मानव जाति के लिए बहुत ऊँचे उत्कृष्ट आदर्शों को हमारे सामने रखकर गये हैं। महाभारत में देखें, रामायण में देखें, पूर्व इतिहास में देखें, कितने ही आदर्श व्यक्ति हुए हैं। मात्र एक सद्गुण 'सत्य' का अभ्यास करके मानव समाज में हमेशा के लिए आदर्श रखकर गये हैंह्वह्वसत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, सम्राट युधिष्ठिर। एक सद्गुण 'दान' के लिए कर्ण और राजा बलि चक्रवर्ती। ऐसे ही 'क्षमा' के लिए, दान-बलिदान के लिए ऋषि दधीचि। इस प्रकार एक-एक सद्गुण के अभ्यास की पराकाष्ठा पर पहुँच कर अपना आदर्श छोड़ गये हैं, जैसे आदर्श धर्मपत्नी, जगन्माता सीता जानकी, पातिव्रत्य धर्म के उच्चतम शिखर पर पहुँची हुई सती अनसूया। भारत के पूर्व इतिहास में ऐसे आदर्श से भरी हुई देश की संस्कृति है। हमें अपने आपको बधाई देनी होगी कि भारतवर्ष में हमारा जन्म हुआ है। इस प्रकार आदर्श मानव बनने के लिए पूर्व इतिहास की पृष्ठभूमि से प्रेरणा प्राप्त करें। आधुनिक जगत में भी उन्नीसवीं शताब्दी, बीसवीं शताब्दी के कई महान पुरुष हुए हैं, जो हमारे सामने आदर्शों को छोड़कर गये हैं, उनको सामने रखकर उन जैसा बनने के लिए तीव्र आकांक्षा हृदय में रखकर कोशिश करनी चाहिए।

यदि आदर्श मानव व्यक्ति बनकर चारों ओर आदर्शों के प्रकाश को फैलाकर सबको लाभान्वित करके हम यहां से गये तो हमारा जन्म सार्थक हो गया। इसके लिए उत्साह होना चाहिए, एक-दूसरे को उत्साहित करना चाहिए, सहयोग देना चाहिए। इसके लिए जीवन के सब कर्म क्षेत्र अभ्यास का क्षेत्र हैं। संयम, अहंकार का दमन, परस्पर प्रेम, नि:स्वार्थता एवं परोपकार का अभ्यास क्षेत्र, घर का जीवन ही है। जहाँ पर हम कार्य करने जाते हैं, स्कूल, कॉलेज में गये तो वहाँ पर भी आत्म-विकास का एक क्षेत्र है। उसके लिए कोशिश करते रहना चाहिए। विद्यार्थियों को क्लास रूम में, प्लेग्राउंड में भी कोशिश करना है। औद्योगिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र भी हमारे लिए एक कसौटी है। व्यक्तित्व-विकास के लिए, एक आदर्श मानव बनने के लिए हर क्षेत्र में कई मौके मिलते हैं। हम आँखें खोलकर, जाग्रत होकर रहें तो हर मौके का लाभ उठा पायेंगे।

इस प्रापंचिक जगत की बाह्य भूमिका में एक आदर्श मानव प्राणी बन सकते हैं। किंतु यह कोई साधारण कार्य नहीं। मानव के अन्दर कई प्रकार के नकारात्मक तत्व हैं, उसके साथ संघर्ष करना पड़ेगा। जैसा कि पांडव हैं तो कौरव भी हैं। प्रकाश है तो अन्धकार भी है। दिव्यता है तो असुरता भी है। हर एक मानव में निकृष्ट एक तत्व है। वह हमारा लोअर सैल्फ पशु कहें या आसुरी भूमिका कहें। इसी में अहंकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ, दर्प, ईर्ष्या, तृष्णा, स्वार्थ, द्वेष, बदला लेने की भावना, झूठ-कपट, छल भाव उसमें है। यह ज्ञान हमें है कि हम मानव हैं और यह निकृष्ट स्तर जो हमारे अंदर है उचित नहीं। हम आये हैं एक आदर्श मानव बनने के लिए जिसमें यह बड़ा बाधक है। बड़ा विघ्न के रूप में है। इसलिए यह जो निकृष्ट भूमिका, पशु भूमिका है, हमारे लिए बिल्कुल उचित नहीं है।

इसको हमें घटाना चाहिए, इसका निर्मूलन करना मुख्य कार्य है आत्म विकास के लिए।

हमारे जीवन की सफलता के लिए हमारे अंदर ही रूकावट है। हमारा शत्रु हमारे अंदर है बाहर नहीं। अपने अन्दर अनुशासन करके, कई नियमों को रखकर क्रमश: योजनाबद्ध कार्य करना होगा। यह सब अपने आप तो नहीं होगा। हमारे अंदर बुराई है, मात्र जान लेने से भी कोई प्रयोजन नहीं। यद्यपि न जानने से तो जान लेना अच्छा है, परंतु जानते हुए उसे बनाए रखने में क्या प्रयोजन? इसलिए निर्मूलन कार्य को तो करना ही है। इसके लिए मानव स्तर को मजबूत, बलिष्ठ बनाना होगा, दृढ़ इच्छा शक्ति से उत्कृष्ट बनाना होगा। बहुत अर्से से हमारे अन्दर जो अड्डा जमा लिया है, मलिन संस्कारों ने, मलिन वासनाओं ने, इनके निर्मूलन में थोड़ा परिश्रम करना होगा। जो अन्दर है, अव्यक्त है, सूक्ष्म है, देख नहीं पाते हैं। बाहर जो चीज है उसे देख सकते हैं, संघर्ष कर सकते हैं। इसलिए कई प्रकार की साधनाओं को अपना करके, आहिस्ते-आहिस्ते इसका उन्मूलन करना पड़ेगा।

आजकल पित्त कोष या गुर्दे में पथरी हो जाय तो पहले जैसे चीड़फाड़ करके निकालते थे, अब तो बिना सर्जरी के, बिना चीड़फाड़ किए, बाहर ही बाहर से उसे निकाल देते हैं इलैक्ट्रानिक थैरेपी से। इसी तरह हमारे अंदर, जहाँ पर हम पहुँच नहीं सकते, सर्जिकली रिमूव नहीं कर सकते हैं तो बाहर ही बाहर से उन्मूलन करने की कोशिश करनी चाहिए। इसके लिए संकल्प शक्ति, ''मैं इसको नहीं चाहता हूँ। मैं इसे निकाल देना चाहता हूँ।'' ऐसा करके बार-बार सुझाव देने से निकल जायगा। मन में बहुत शक्ति है, विचार में बहुत शक्ति है, बार-बार एक ही विचार पुष्टित करते जायें तो उसके अन्दर निहित शक्ति सक्रिय बन जाती है। उसमें निर्माणात्मक विचार की

शक्ति है। इसका प्रयोग करना है। मन की शक्ति साक्षात भगवती की शक्ति है।

मन की सकारात्मक-निर्माणात्मक शक्ति को जाग्रत करके बुद्धि के द्वारा विचार और विवेक से, भगवद् प्रार्थना से हम उसको प्रयोग करके अपने अंदर के अवगुण आदि नकारात्मक तत्व को निकालने में समर्थ हो जायेंगे। स्वतः सुझाव (ऑटो सजैशन) और प्रतिदिन प्रेरणाप्रद उच्चकोटि के विचारों को अपने अंदर ग्रहण करना चाहिए। स्वाध्याय के द्वारा, संतों के चरित्र, महापुरुषों के चरित्र, ज्ञानोपदेश की पुस्तकें पढ़कर प्रतिदिन बिना चूके पन्द्रह बीस मिनट एकाग्रचित्त से ग्रहणशील भाव के साथ उस ज्ञान का पान करना पड़ेगा। यह प्रबल प्रक्रिया है। जैसे शरीर की पुष्टता की वृद्धि के लिए हम स्थूल आहार खाते हैं। अन्नमय कोष की वृद्धि के लिए नाश्ता करते हैं, भोजन करते हैं, फिर रात में भोजन करते हैं। ऐसे ही दिन में कम से कम एक बार स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान को ग्रहण करना चाहिए। सूक्ष्म ज्ञान के विचार हमारे मन के अन्दर पहुँच कर, वहाँ जो अनुचित तत्व है उसके साथ संघर्ष करके काल क्रमेण मन को पूरा का पूरा बदलने की शक्ति स्वाध्याय में है। नये ज्ञान के विचार को ग्रहण करने से इस क्रिया को बनाए रखने में अंत में हमारे अन्दर एक नया मन बन जाता है, पुराना मन खत्म हो जाता है। भगवान के नाम की शक्ति, जप के द्वारा जो अंदर तक पहुँचती है, हमारे मन का स्वभाव है, मन की शक्तियाँ हैं, विचार शक्ति, भाव और बुद्धि इन सबको पवित्र करके उसकी दिशा का परिवर्तन कर देती है।

यह दो तत्वह्वह्वपाशविक तत्त्व या आसुरी तत्त्व हमारे अन्दर हैं, एक मानवता तत्त्व भी हमारे अन्दर है। लेकिन सबसे बढ़कर रहस्यात्मक परम सत्य हमारे अन्दर एक अत्यंत उत्कृष्ट, एक उत्तम, एक पवित्रतम दिव्य

तत्त्व है। आप नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्यमुक्त परिपूर्ण आत्मा हैं। भगवान का आप अंश हैं। भगवान की समस्त दिव्यता आपमें निहित है। ज्ञान, पवित्रता, आनन्द, शांति, सब सद्गुण आपके अंदर हैं। यही आपकी वास्तविकता है। अब तक आपकी चेतना में अज्ञान की, गलत ख्याल की विपरीत समझ थी; इस अवस्था को आपने समाप्त करना है। आज से अपने आपको जानना प्रारंभ करिए, 'न हम निकृष्ट पाशवी तत्त्व हैं, न हम चंचल मानवता हैं। हम परिपूर्ण दिव्य हैं। हम भगवान का अंश हैं। जन्म-मृत्यु से परे हैं। पूर्व जन्म-कृत कुछ कर्मवशात् मानव समझ करके हम अज्ञान में फँसे हुए हैं।' मानवता आपका बंधन है, आपका जेलखाना है। दिव्यता आपकी आज़ादी है। आप सदैव आज़ाद, मुक्त, दिव्य, परिपूर्ण आत्म तत्त्व हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा आप हैं।

आपका तीसरा उद्देश्य, तीसरा कर्त्तव्य, तीसरा लक्ष्य उस स्तर में है, उस क्षेत्र में है जो आपका आध्यात्मिक क्षेत्र है। इसके वास्ते भगवान ने आपको मानव जन्म दिया है। अन्य पशु-पक्षी, प्राणी इस कार्य को नहीं कर सकते हैं, उस स्तर में पहुँचने की क्षमता नहीं है। प्यारे, दिव्यात्मा! भगवान का दिया हुआ मानव जीवन एक सुनहरी अवसर मिला है। सोने के थाल में हीरक डाल कर दिया है; जो अद्भुत पुरस्कार है। आपको इसका अपव्यय नहीं करना, इसे वृथा खोना नहीं चाहिए। प्रयत्न करते-करते शुभाशुभ कर्मों को भोगते रहना जीवन का गौण हिस्सा है। आप मानव हैं, धरती रूपी स्टेज पर जीवन रूपी नाटक में अपने पार्ट को आप अदा करें। यह नहीं सोचना कि सब कुछ छोड़ कर जंगल में जाकर किसी गुफा में बैठ जायें; इससे कुछ नहीं होता। भगवान ने हमको मानव बनाया, यह हमारा महत्त्वपूर्ण सौभाग्य है। उन्होंने हमको सोच-विचार करने की शक्ति दी है, इसका परिपूर्ण रूप में

प्रयोग करके जीवन को ठीक-ठीक एक नयी दिशा देकर अपने दोनों कर्त्तव्यों को कर लेना चाहिए, जब तक हमारी अंतिम सांस निकलती है। हम आदर्श मानव बन कर वर्तमान समाज को लाभान्वित कर लेना चाहिए। साथह्वह्वसाथ उज्ज्वल रूप में अपनी आध्यात्मिक भूमिका में सक्रिय साधना करके अभ्यास करना है। सुप्त दिव्यत्व का, अपने निज स्वरूप का हमें बोध प्राप्त कर लेना चाहिए।

हमें जग जाना चाहिए, ''मैं एक अजर, अमर, अविनाशी दिव्य आत्मा हूँ। भगवान का एक अंश हूँ। उनके साथ पुन: मिलने का एक अवसर दिया है।'' हर एक मानव व्यक्ति का अपने अपने वास्ते करने का कार्य हैह्वह्वकोई दूसरा आपके लिए यह कार्य नहीं करेगा। ब्रह्मा जी, विष्णु और सद्गुरु भी नहीं कर के देंगे। वे आपको मदद दे सकते हैं, प्रेरणा दे सकते हैं, मार्ग दर्शन कर सकते हैं, चेतावनी देकर जगा सकते हैं परन्तु कार्य तो आपको स्वयं ही करना पड़ेगा, अपने व्यक्तित्व में दिव्यता का प्रगटीकरण तो आपको स्वयं ही करना होगा। किसी भूखे व्यक्ति के सामने थाली में भोजन डालकर खाने के लिए बोल सकते हैं, 'खाओ जी।' लेकिन खाने का कार्य तो उसे आप ही करना होगा। दूसरे ने खाया तो आपकी भूख बुझेगी क्या? दूसरे ने पानी पिया तो आपकी प्यास बुझेगी क्या? यह कार्य आपको स्वयं करना पड़ेगा। शरीर में कोई रोग हो जाता है, तो डॉक्टर हैं, वैद्य हैं, हकीम हैं जो आपको औषधि दे सकते हैं, पथ्य-परहेज बता सकते हैं, परन्तु रोग-निवारण हेतु दवाई तो आपको ही खानी होगी, उनके दवाई खाने से तो आप ठीक नहीं हो सकते। स्वयं ही पथ्य-परहेज करना होगा।

आपके सामने आपके जीवन की अमूल्यता, आपके जीवन का गहरा अर्थ, आपके जीवन का महान उद्देश्य रखा है। गुरु महाराज के जीवन का

यह कार्य रहाह्वह्व'हे मानव! जागो। कितना अद्‌भुत एक सुनहरी अवसर, मौका, आपको मिला है। इसको भूलो नहीं। इसको वृथा नहीं खोना चाहिए।' कुछ लोग सोचते हैं हमारे लिए कई परेशानियाँ हैं, हम बहुत उलझन में हैं कैसे करें? अरे भई! दस उलझन हैं तो इस को एक और उलझन समझ कर इस कार्य में लग जाओ। प्राइम मिनिस्टर जवाहर लाल नेहरू कहते थे, 'बहानेबाजी मुझे पसंद नहीं। मुझे कर्तव्य कर्म-पूर्ति और उसका परिणाम चाहिये।' महत्त्वपूर्ण लक्ष्य प्राप्ति के लिए आप आए हैं जो बताया गया है, उसमें लग जाना चाहिए। शतश: पूरा नहीं कर पाते, परवाह नहीं! जिस वास्ते हमें यहाँ भेजा गया है, जिस वास्ते हमें मानवता प्राप्त है पूरा का पूरा हमें लग जाना चाहिए उस कार्य में थोड़ा बाकी रह गया तो एक और जन्म सही। लेकिन उतर जाना चाहिए इस कार्य में। दिन-प्रतिदिन हमारी आयु क्षय होती जाती है। बाकी सब कार्य भले ही हम पोस्टपोन कर दें, परंतु मुख्य कार्य, जिसके कारण हम धरती पर आये हैं, उसको टालना नहीं चाहिए, यह कोई बुद्धि की बात नहीं। फिर पश्चात्ताप करके रोए तो आपको अकेले रोना पड़ेगा। आपके वास्ते न माँ-बाप रोएंगे, न भाई-बहन और न ही मित्र मंडली आपके साथ रोएगी।

गुरु महाराज की कई अंग्रेजी रचना हैं। गद्य भी लिखा, पद्य भी। छोटा-छोटा सूत्र भी लिखा। कई गीत भी लिखकर गाए। संपूर्ण दर्शन, श्रुति-स्मृति, गीता का ज्ञान सब सुन्दर-सुन्दर गीत अंग्रेजी में लिखे। गुरु महाराज ने चेतावनी दीह्वह्व'हे अमर आत्मा! आपका मानव जीवन भगवान द्वारा दिया उनका अंश है। आप दिव्यात्मा हैं। उनके द्वारा दिया एक अमूल्य अतुल्य सुनहरी अवसर है।' इसका अर्थ अच्छी तरह गहराई से जानकर, मानव-जीवन के लक्ष्य को पूरा कर लेना चाहिए। पिछले जन्म के शुभाशुभ

कर्म, सुख-दुःखादि का अनुभव करते हुए उनसे कुछ ज्ञान-प्राप्ति की कोशिश करनी चाहिए। ये अनुभव बेकार नहीं जाने चाहिए। ऐसे आदर्श मानव व्यक्ति बनते हुए, मानव समाज, मानव समुदाय को लाभान्वित करना है। मानव समाज को अपना ऋणी बना लेना चाहिए। यह करते हुए साथ-साथ अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं भूलें। आप जागें। अपनी दिव्यता को अच्छी तरह से पहचानें। उस दिव्यत्व में आप संस्थित हो जायं। अपने जीवन की दिव्यता को सुन्दर रूप में काया-वाचा-मनसा प्रकट करते हुए जीवन को दिव्यता से उज्ज्वल बनाएं। यही करना है। इसको भूलना नहीं है। गुरुदेव ने एक अंग्रेजी गीत में जो गाया उसका भाव हैह्वह्व''आपका जीवन केवल आहार-निद्रा, खाना, पीना, सोना नहीं, यह तो पशुवत् जीवन है।'' **'आहार निद्रा भयमैथुनानी, समानिचतानि नृणां पशुनाम्'।** (चाणक्य नीति शास्त्र)

गुरुदेव कहते हैंह्वह्व''इसके लिए आप यहाँ थोड़े ही आए हैं। आप तो भगवान की संतान हैं। विलंब नहीं करें। काल अति वेग से दौड़ रहा है। कई बड़े सम्राट हो गएह्वह्वसम्राट अशोक कहाँ हैं? सम्राट हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर कहाँ गये? सब चले गये। नामो निशान नहीं। आप भी एक दिन चले जायेंगे। अब भी मौका है, करें, इस कार्य को छोड़ें नहीं। दो विश्व युद्ध हो गए लाखों की संख्या में मक्खी-मकोड़े की तरह मानव मरे। उससे आप ने कुछ सीखा? कुछ समझा? मानव जीवन कितना क्षणिक है। आता है, चला जाता है। आपको कुछ वैराग्य आया, कुछ विवेक विचार आपके अन्दर उदित हुआ? दुनिया में क्या है? देखकर कुछ सीखना चाहिए। कुछ जप, ब्रह्म विचार नहीं किया, तो फिर हम शांति और आनन्द कैसे प्राप्त कर सकते है। इस दुःखमय संसार में ऐसा नहीं किया आत्म विकास का प्रयत्न नहीं

किया, ब्रह्म विचार साधना नहीं किया तो शांति कैसे मिलेगी? जीवन ऐसे ही व्यर्थ चला जायगा। अंतिम घड़ी में कंठ में कफ़ जम गया तो कौन आयेगा मोक्ष प्राप्ति में मदद देने के लिए? आपको पुरुषार्थ करना है।''

उपनिषद् में जो कहाह्वह्व**'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।'**

गुरु महाराज ने इसे ही विस्तृत रूप दिया है। हमारे अन्धेपन को, मूर्खता को सामने रख कर कहाह्वह्वऐसा मत करो भाई, बहुत संक्षेप रूप में बतायाह्वह्वदिव्य जीवन व्यतीत करें। दिव्य जीवन क्या है? स्वार्थ को त्याग कर परोपकार करें, सेवा करें। भगवान में भक्तिभाव रख कर उनकी उपासना, पूजा-आराधना करें। इन्द्रियों का दमन और मन को वश में रखकर एकाग्र चित्त से ध्यान करें। विवेक-विचार को सक्रिय बनाकर आत्म ज्ञान की ओर बढ़ें। सेवा भक्ति-ध्यान-ज्ञान को अभ्यास करते वक्त सदाचार को अपनाएँ। हमारे जीवन में किसी को दुःख हानि नहीं पहुँचे, सब पर दया करें। अहिंसात्मक व्यवहार रखते हुए सेवा-भक्ति-ध्यान-ज्ञान का अभ्यास करें। साक्षात्कार प्राप्त करें। यही दिव्य जीवन है।

४. जन्म दिवस का विशेष सन्देश

(नब्बेवाँ जन्म-दिन २४-९-२००६, शान्ति निवास, देहरादून)

इस मर्त्य लोक में जो मनुष्य शरीर पाया है, वह अन्य प्राणियों से सबसे ज्यादा उत्तमोत्तम है। हमारा दिल है, औरों के दु:ख में हम दया कर सकते हैं, औरों की भूख में दया कर अन्नदान कर सकते हैं, द्रव्यदान दे सकते हैं, कुछ न कुछ परोपकार करना, केवल मात्र मानव-लोक का ही कार्य है। मानव ही अनेक कार्यों को मन-बुद्धि के चिंतन द्वारा कर सकता है। मन बुद्धि के कारण वह कोई नई खोज कर सकता है। बड़े-बड़े आविष्कार कर सकता है। हवाई जहाज (ऐरोप्लेन) का आविष्कार हो गया। मानव थोड़ा भी जमीन से ऊपर नहीं उठ सकता, नहीं उड़ सकता, वह नीचे आ जायगा। लेकिन रेलगाड़ी, मोटर कार, जम्बो जेट प्लेन इत्यादि ने उसे जीत कर, ओवरकम कर लिया। ऐरोप्लेन, मेघमंडल से भी ऊपर चला जाता है, पूरा का पूरा भूमंडल, भूगोल का भी चक्कर लगा सकते हैं। अमेरिका, साउथ अमेरिका, इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया इत्यादि सब जगह हो आते हैं। एयर लाइन्स देखेंह्नह्नदिल्ली से बम्बई, बम्बई से कलकत्ता, कलकत्ता से त्रिवेन्द्रम, त्रिवेन्द्रम से मद्रास पूरा का पूरा देश-विदेश घूम सकते हैं। इतना तक कि अभी स्पेसशिप बनाया जिसके द्वारा चन्द्रमा तक पहुँचे हैं। दो लोग पूरा चंद्रमा घूमे।

बुद्धि की शक्ति से ही योगी जन, संत जन, कई व्यक्तियों ने भगवद् साक्षात्कार प्राप्त किया। श्री रमण महर्षि, श्री श्री आनन्दमयी माँ हमारे ही युग

में ही हुए। हमने उनका दर्शन किया है। ये सब भगवद् साक्षात्कार करके बिल्कुल शांत, एकदम शांत, एकदम आनन्द, आनन्द, आनन्द की ही स्थिति में रहते थे। गुरु महाराज ने भी भगवद् साक्षात्कार किया था। ऐसा और किसी प्राणी के लिए संभव नहीं। मानव प्राणी के अलावा और कोई जीव-जन्तु जानते ही नहीं कि हमारे अन्दर सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता भगवान विद्यमान हैं। पंछी घोंसला बना करके, अंडा रखकर सेता है, फिर छोटे बच्चों को खिलाता है। पंख आ गया तो उड़ेंगे। नदी-नाले, पर्वत-सागर सब पार कर सकते हैं। हिंसात्मक जंतु जंगल में रहते हैं। अहिंसात्मक, जैसे हम बिल्ली रखते हैं, कुत्ता रखते हैं, पिंजरे में तोता रखते हैं। इतना सब करके वे बिल्कुल नहीं जानते कि ईश्वर सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता है।

मानव यहाँ धरती पर भगवद् साक्षात्कार करने आया है। ऐसी समझ अन्य प्राणियों में नहीं है। हम सर्वश्रेष्ठ मानव-शरीर प्राप्त करके सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता भगवान को जानते हैं। औपनिषदिक काल में काफी लोगों ने भगवद् साक्षात्कार किया। अभी भी ऐसे कई व्यक्ति हुए हैं। मानव शरीर इतना उत्कृष्ट है, जिसका आपने सदुपयोग करना है। इससे परोपकार करना है, भगवच्चिन्तन करना है, भगवान पर ध्यान लगाना है, भगवान के नाम का जिह्वा द्वारा जप करते रहना है। नाम जप से भी हम भगवान को प्राप्त कर सकते हैं।

जंगल में आने-जाने वालों को रास्ते में, लूटपाट करके चीजें खींच कर, सिर फोड़ कर, मारकाट मचाने वाला एक डाकू था, जिसका नाम रत्नाकर था। एक बार सप्तऋषि उस ओर पहुँच गये। डाकू ने उन्हें पकड़ लिया। उनके पास तो कपड़ों के अतिरिक्त कुछ न था। एक ऋषि बोला, ''तुम ऐसा नीच कार्य कर रहे हो। रास्ते चलने वालों को मारपीट करके,

डकैती करके अपने कुटुंब का निर्वाह कर रहे हो, यह पाप है। इस दुष्कर्म के लिए तुम्हें भविष्य में इसका फल भोगना पड़ेगा। जो पाप करता है, दुःख भोगता है। जो पुण्य करता है, सुख भोगता है।'' वह बोलाह्न''नहीं, नहीं, मैं अपने लिए नहीं अपनी परिवार के लिए कर रहा हूँ।'' ऋषि बोले, ''जाकर उनसे पूछोह्न'मैं पाप करके तुमको पैसा बगैरह अन्य चीजें लाकर देता हूँ, तुम पाप भोगने को तैयार हो'?'' डाकू बोलाह्न''नहीं, मैं पूछने नहीं जाऊँगा। पूछने गया तो आप सब चले जायेंगे।'' ऋषि बोलेह्न''हमको बांध दो।'' उसने सबको पेड़ से बांध दिया। जाकर परिवार वालों से पूछाह्न''मैं जो कुछ भी द्रव्य वगैरह ले आता हूँ, संत बोलते हैं, यह पाप है। कष्ट भोगना पड़ेगा, दुःख भोगना पड़ेगा। आप जानते हैं, सब आपके लिए करता हूँ। क्या आप मेरे साथ पाप का परिणाम भोगने को तैयार हैं?'' उन सबने उत्तर दियाह्न''तुम कुटुंब के मालिक हो, हमें खिलाना तुम्हारा कर्तव्य है। हम इसके वारिसदार नहीं हैं। हमें नहीं पता तुम क्या करते हो? किस तरीके से कैसे द्रव्य लाते हो? हमें क्या पता? हम इसमें भाग नहीं लेंगे।'' ऐसा सुनकर डाकू ने कहाह्न''ओ हो! यह तो पूरी बात हमारे सिर पर आ गयी। हमारे कुटुंब ने हमारा साथ देने से इंकार कर दिया। अब क्या करना है?''

वापिस जंगल में गया। जाकर सप्तऋषि को पेड़ से खोल दिया। साष्टांग दंडवत प्रणाम किया। बोला, ''मुझे रास्ता बताइए। भविष्य में बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। पाप किया तो उसका कष्ट भोगना पड़ेगा। मुझे सद् राह दिखाइए। मैं कैसे बचूँगा? नरक से कैसे बचूँगा? नरक की अधम स्थिति, नरक में मारपीट करते दुःख से कैसे बचूँगा? कुछ बताइए।'' सप्तऋषि ने उसको राम नाम दिया। 'राम'ह्नभगवान का नाम हैह्न''ॐ नमो

नारायणाय'' मंत्र से 'रा' निकाला। ''ॐ नम: शिवाय'' से 'म' निकाला। दोनों को मिलाकर 'राम' नाम दिया। राम नाम का उपदेश दिया। वह इतना तो ग्रहण कर लेता है, पर जंगली डकैत है, अनपढ़ है, वह 'मरा' 'मरा' जपता रहा।

उलटा नाम जपत जग जाना। वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।

ऋषि लोग गंगा सागर जाया करते थे। गये। जब यात्रा करके वापसी में इसी रास्ते में पहुँचे तो याद आया। एक डाकू था यहाँ। उसे दीक्षा दी थी। देखें, अभी क्या हालत है? खोज करते–करते एक ऋषि के कान में कुछ आवाज सुनाई पड़ी। सुनते–सुनते उस आवाज के नज़दीक तक गया। जहाँ साँप बगैरह रहते हैं, एक मिट्टी का बड़ा ढेर देखा। उसमें से आवाज थी 'मरा', 'मरा', 'मरा'। जाकर के उसको तोड़ा तो देखा वह ध्यान में बैठा हुआ था। उसे बिल्कुल पता नहीं चला कि उस पर मिट्टी जमा हो गयी। साँप घुसने वाले ऐसे ढेर को संस्कृत में वल्मीक कहते हैं। उसको जगाया। कान में जाकर के ॐ ॐ ॐ किया। वह जागा, साष्टांग दंडवत किया। वल्मीक से निकले, इसलिये उनको 'वाल्मीकि' नाम दिया।

वह अब वाल्मीकि ऋषि हो गये। सदा राम नाम लेते रहते थे। जंगल में एक आश्रम बनाया। एक दिन शिष्य के साथ कपड़ा लेकर नदी में स्नान के लिए गये। एक शिकारी को धनुष बाण लिए देखा जो पेड़ पर क्रीड़ा करते युग्म क्रौंच पक्षी को देख रहा था, जैसे ही बाण खेंचते देखा तो ऋषि वाल्मीकि जी के मुख से **''मा निषाद'' ''मा निषाद''**, मत करो, मत करो निकल पड़ाह्वह्वबाण को मत फेंको।

स्वयं सरस्वती देवी ही इन वचनों में थीं। इसीलिए इनको आदि कवि कहा जाता है। पहली रचना संस्कृत में इनके द्वारा हुई। ब्रह्मा जी वहाँ पहुँच

गये। बोलेह्वह्व''रावण नामक असुर को मारने के लिए राजा दशरथ के कुल में भगवान अवतार लेंगे। उनका नाम राम होगा। विष्णु भगवान ही अवतरित होकर रावण का वध करेंगे। मैं भविष्यवाणी करता हूँ कि आप रामायण लिखें। वही कविता रूप में रचित आदि महाकाव्य माना जायेगा।''

बहुत वर्षों पश्चात संत कवि तुलसी दास जी ने इसी रामायण के आधार पर हिंदी (अवधी भाषा) में रामायण लिखी। काशी में उस समय कई ब्राह्मणों ने इसका विरोध किया। 'तुमने हिंदी भाषा में रचना की। यह पवित्र नहीं। यह देव भाषा नहीं है, ऐसा नहीं करना चाहिए।' तुलसीदास जी ने कहा ''अभी काशी के राजा हैंह्वह्वविश्वनाथ भगवान। मंदिर में जाकर उनसे पूछेंह्वह्वहिंदी में लिखी जा सकती है कि नहीं?'' मंदिर में शंकर भगवान लिंग रूप में हैं। वहाँ जाकर तुलसी-रामायण को रखा गया। शंकर भगवान ने प्रकट होकर त्रिशूल को पुस्तक के ऊपर तीन बार लगाकर जैसे अपनी सम्मति प्रदान की। फिर अदृश्य हो गये। ब्राह्मण लोगों ने उनके चरण पकड़ कर कहा, ''विश्वनाथ भगवान ने मंजूर किया है।''

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण, तुलसीदास जी का रामचरित-मानस, ऐसे कई कविता, गद्य, आध्यात्मिक ग्रंथ साहित्य सब मानव ही तो कर सकता है, अन्य प्राणी नहीं। वे तो केवल मात्र संतान संरक्षण, उनके आहार-विहार का ख्याल रख सकते हैं। फिर बच्चे बड़े होकर अपने आप समर्थ हो जाते हैं। मानव जन्म अत्यंत अमूल्य है। संतों से यह भी पता लग गया कि भगवद् साक्षात्कार हो गया तो पुनर्जन्म नहीं होगा। बाद में दुःख-संकट नहीं होगा।

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् (भगवद्गीता १३-८)

कई प्रकार के दु:ख-बुढ़ापा व्याधि कितना संकट भोगना पड़ता है। इसलिए साधना में लगे रहना चाहिए। दु:ख की भूमि है। डॉक्टर-हकीम के पास जाना पड़ता है। मानव शरीर साधना शरीर है, यही इसकी उत्कृष्ट मूल्यता है। भगवान का ध्यान लगाएँ। जिह्वा से भगवान के दिव्य नाम का जप करें। भगवान का चिंतन करें। इसी से हम मृत्यु के परे जा सकते हैं। बड़े संत लोगों ने हमको रास्ता दिखाया है। हमारे गुरु महाराज स्वामी शिवानन्द जी, श्री अरविंद घोष, श्री रमण महर्षि, श्री रामकृष्ण परमहंस, श्री श्री आनन्दमयी माँ इत्यादि सबने हमें रास्ता दिखाया।

आप सब भी ऐसा करना। गृहस्थी के काम से थोड़ा समय निकाल कर साधना करें। प्रात:काल उठें, ध्यान करें, भगवन्नाम का जप करें। मध्याह्न में भोजन करने के पहले ठीक बारह बजे थोड़ा ध्यान कर सकते हैं। संध्याकाल में थोड़ा ध्यान करें, जप करें, चिंतन करें। श्रीमद् भागवत, भगवद्गीता, वाल्मीकि-रामायण, तुलसीमानस किसी में से ही थोड़ा-थोड़ा स्वाध्याय करें। मृत्यु से पहले ही भगवद् साक्षात्कार करना मानव जीवन का लक्ष्य है। फिर पुनर्जन्म नहीं है।

कैवल्य साम्राज्य, मोक्ष, सर्व दु:ख-निवृत्ति, परमानन्द-प्राप्ति, नित्य तृप्ति, जीवन्मुक्ति, यही मेरा जन्मदिवस का संदेश है। हरि ॐ तत्सत्!